

[2019] 13 एस.सी.आर. 177

अधिकृत अधिकारी, इंडियन बैंक

बनाम

डी. विशालक्षी एवं एक अन्य

(2015 की दीवानी अपील संख्या 6295)

23 सितम्बर, 2019

**[ए. एम. खानविलकर तथा दिनेश माहेश्वरी, न्यायमूर्ति गण]**

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002—धारा 14—मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी (सी.जे.एम.) बनाम धारा 14—अधिकारिता— धारा 14 के अंतर्गत सुरक्षित लेनदार द्वारा सुरक्षित परिसंपत्ति का कब्जा प्राप्त करने हेतु किए गए अनुरोध के प्रसंस्करण के संबंध में विभिन्न उच्च न्यायालयों के मतों में मतभेद था। बॉम्बे, कलकत्ता, मद्रास, मध्य प्रदेश तथा उत्तराखंड उच्च न्यायालयों ने उक्त प्रावधान की व्याख्या इस प्रकार की कि महानगरीय क्षेत्रों में केवल मुख्य महानगरीय दंडाधिकारी (सी.एम.एम.) तथा गैर-महानगरीय क्षेत्रों में जिला दंडाधिकारी (डी.एम.) ही ऐसे अनुरोधों पर विचार करने के लिए सक्षम हैं। तथापि, केरल, कर्नाटक, इलाहाबाद तथा आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालयों ने उसी प्रावधान की भिन्न व्याख्या करते हुए यह माना कि यह प्रावधान गैर-महानगरीय क्षेत्रों में मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी (सी.जे.एम.) को धारा 14 के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करने से वंचित नहीं करता। अपील में निर्णय: यह माना गया कि सी.एम.एम. तथा सी.जे.एम. की शक्तियाँ एवं कार्य समान एवं समरूप हैं, विशेषकर दण्ड प्रक्रिया संहिता में निर्दिष्ट विषयों के संदर्भ में। ये अभिव्यक्तियाँ (सी.एम.एम. और सी.जे.एम.) परस्पर विनिमेय एवं समानार्थी हैं। इसके अतिरिक्त, धारा 14 स्पष्ट रूप से सी.जे.एम. को सुरक्षित लेनदार के अनुरोध पर विचार करने से निषिद्ध नहीं करती। अधिनियम, 2002 के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति अपने स्वभाव से गैर-न्यायिक अथवा राज्य की दमनात्मक शक्ति है। सभी पहलुओं के समग्र परीक्षण के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला गया कि “सी.एम.एम.” शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए, गैर-महानगरीय क्षेत्रों के संदर्भ में सी.जे.एम. को भी उसमें सम्मिलित करना उचित है, जो दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत निर्दिष्ट प्रशासनिक एवं न्यायिक कार्यों का निर्वहन करता है। अतः, सुरक्षित लेनदार द्वारा धारा 14 के अंतर्गत किए

गए आवेदन पर विचार करने हेतु सी.जे.एम. भी समान रूप से सक्षम है। तदनुसार, केरल, कर्नाटक, इलाहाबाद एवं आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण स्वीकार एवं अनुमोदित किया गया।

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002—धाराएँ 14, 35 एवं 37 तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—क्या 2002 के अधिनियम के प्रावधान दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों पर अधिभावी होते हैं, जिसके अंतर्गत सी.एम.एम. के कार्य सी.जे.एम. के समान हैं—निर्णीत: दण्ड प्रक्रिया संहिता में “सी.एम.एम.” तथा “सी.जे.एम.” अभिव्यक्तियाँ परस्पर विनिमेय रूप से प्रयुक्त होती हैं और एक-दूसरे के समानार्थी मानी जाती हैं—धारा 14, यद्यपि शाब्दिक रूप से पढ़ी जाए, तो भी यह किसी प्रकार से दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत सी.एम.एम. तथा सी.जे.एम. के अधिकार-क्षेत्र एवं शक्तियों के आवंटन में संशोधन का संकेत नहीं देती—अतः, 2002 के अधिनियम की धारा 14 को कड़ाई से पढ़ने पर उसे दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं माना जा सकता, और न ही इसके विपरीत—इसके अतिरिक्त, 2002 के अधिनियम की धारा 37 यह उपबंधित करती है कि उक्त अधिनियम के प्रावधान अन्य प्रचलित विधियों के अतिरिक्त होंगे—अतः, यह कहना होगा कि 2002 के अधिनियम की धारा 14 के प्रावधान दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के साथ किसी प्रकार से असंगत नहीं हैं, और फलस्वरूप 2002 के अधिनियम के प्रावधान दण्ड प्रक्रिया संहिता के अतिरिक्त हैं, न कि उसके अपवाद स्वरूप।

अपीलों का निस्तारण करते हुए, न्यायालय ने—

अभिनिर्धारित किया: 1. यह उल्लेखनीय है कि वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 14 ऐसी प्रावधान नहीं है जो न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र से संबंधित हो। यह एक उपचारात्मक उपाय है, जो सुरक्षित लेनदार को उपलब्ध है, जो उधारकर्ता द्वारा प्रदत्त प्रतिभूति के प्रवर्तन के उद्देश्य से सुरक्षित परिसंपत्ति का कब्जा प्राप्त करने हेतु अधिकृत अधिकारी की सहायता लेना चाहता है। अधिकृत अधिकारी मूलतः प्रशासनिक या कार्यकारी कार्य करता है, जिससे राज्य की दमनात्मक शक्ति के माध्यम से सुरक्षित लेनदार को सहायता प्रदान की जा सके, ताकि विधायिका की उस मंशा को प्रभावी बनाया जा सके जिसके अंतर्गत सुरक्षित लेनदार को देय बकाया राशि की शीघ्र वसूली सुनिश्चित की जाती है। अधिकतम, अधिकृत अधिकारी द्वारा की गई शक्ति का प्रयोग अर्द्ध-न्यायिक स्वरूप धारण कर सकता है, जिसे कार्यपालक दंडाधिकारी

द्वारा भी निष्पादित किया जा सकता है। अधिकृत अधिकारी से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह पक्षकारों द्वारा उठाए गए विवादास्पद मुद्दों का निर्णय करे, बल्कि वह केवल धारा 14 के प्रथम उपबंध में उल्लिखित अनुपालनों का सत्यापन करता है; और उस संबंध में संतुष्ट होने पर सुरक्षित परिसंपत्तियों के कब्जे को सुगम बनाने हेतु आदेश पारित करता है। (कंडिका 40) [216-सी-एफ]

2. यह विधि द्वारा सुस्थापित है कि कोई भी दीवानी न्यायालय ऐसे किसी विषय में आरंभ की गई कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, जिसका निर्धारण ऋण वसूली अधिकरण या ऋण वसूली अपीलीय अधिकरण को वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 के अधीन करने का अधिकार प्राप्त है, और विशेषतः उन कार्यवाहियों के संबंध में भी नहीं, जो उक्त अधिनियम या बैंकों और वित्तीय संस्थानों को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 के अधीन प्रदत्त शक्तियों के अनुपालन में की गई हों या की जाने वाली हों। यह व्यवस्था उक्त अधिनियम, 2002 की धारा 34 द्वारा विनिर्दिष्ट की गई है। (कंडिका 41) [216-एफ-जी]

3. वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 35 के उपबंधों की व्याख्या से स्पष्ट रूप से यह संकेत मिलता है कि इस अधिनियम के उपबंध वर्तमान में प्रवृत्त किसी भी अन्य विधि पर अधिभावी होंगे। प्रश्न यह है: क्या वर्ष 2002 के अधिनियम के उपबंध दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंधों पर अधिभावी होंगे, जिसके अधीन सी.एम.एम. द्वारा संपादित किए जाने वाले कार्य सी.जे.एम. के समान हैं। आगे, "सी.एम.एम." और "सी.जे.एम." अभिव्यक्तियाँ दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में परस्पर विनिमेय रूप से प्रयुक्त होती हैं और एक-दूसरे के पर्याय मानी जाती हैं। धारा 14, भले ही शाब्दिक रूप से पढ़ी जाए, किसी भी प्रकार से यह संकेत नहीं करती कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन सी.एम.एम. और सी.जे.एम. को प्रदत्त अधिकार-क्षेत्र और शक्तियों का विनियोजन वर्ष 2002 के अधिनियम द्वारा परिवर्तित किया गया है। इस प्रकार समझे जाने पर, वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 को *संकीर्ण अर्थ* में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंधों के साथ असंगत नहीं माना जा सकता और न ही इसके विपरीत। यदि ऐसा है, तो वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 35 में किया गया प्रावधान, वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 की व्यापक व्याख्या पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा। जबकि, सुरक्षित ऋणदाताओं (बैंकों) द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन में यह बल दिया गया है कि वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 37 विचाराधीन प्रश्न का उत्तर प्रदान करती है। धारा 37 का साधारण पाठ यह संकेत करता है कि वर्ष 2002 के अधिनियम के उपबंध अथवा

इसके अधीन बनाए गए नियम, निर्दिष्ट अधिनियमों अथवा "वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि" के अतिरिक्त होंगे। यह कहने के पश्चात् कि वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 के उपबंध किसी भी प्रकार से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंधों के साथ असंगत नहीं हैं, यह अनुगामी रूप से निष्कर्ष निकलता है कि वर्ष 2002 के अधिनियम के उपबंध संहिता के अतिरिक्त हैं, न कि उसके अपकर्ष में। [कंडिका 43][217-बी-ई, जी-एच]

4. यह कहना पर्याप्त होगा कि 2002 के अधिनियम के विषय एवं उद्देश्य तथा धारा 14 के अधीन निहित विधायी आशय एवं प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए, उक्त प्रावधान का संदर्भगत एवं उद्देश्यपरक निर्वचन विधायी आशय को और आगे बढ़ाएगा। इस परिप्रेक्ष्य में, 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत अधिकृत अधिकारी को प्रदत्त शक्ति परिसीमित है तथा वह केवल राज्य की दमनात्मक शक्ति के प्रयोग के रूप में है, जिससे सुरक्षित आस्तियों के कब्जे को प्राप्त करने में सहायता प्रदान की जा सके। (कंडिका 44) [218-ए-बी]

5. *जनार्दन बनाम महाराष्ट्र राज्य* में प्रतिपादित सिद्धांत को लागू करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्याधिकारियों (सी.एम.एम. को सी.जे.एम. से प्रतिस्थापित करना) का प्रतिस्थापन, अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के आलोक में उनके द्वारा निर्वहन किए जाने वाले प्रशासनिक एवं कार्यकारी अथवा तथाकथित न्यायेतर कार्य, 2002 के अधिनियम की धारा 14 के साथ असंगत नहीं होंगे; बल्कि यह उसके निर्वचन में एक अनुमेय दृष्टिकोण होगा और अधिनियम के विषय एवं उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए विधायी आशय को और आगे बढ़ाएगा। यह 2002 के अधिनियम की धारा 14 का एक सार्थक, उद्देश्यपरक एवं संदर्भगत निर्वचन होगा, जिसके अंतर्गत सी.जे.एम. को सुरक्षित लेनदार को सुरक्षित आस्ति का कब्जा प्राप्त करने में सहायता प्रदान करने हेतु सक्षम माना जाएगा। (कंडिका 46) [222-ई-एफ]

6. संक्षेप में, यह न्यायालय यह धारित करता है कि सी.जे.एम. 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन सुरक्षित लेनदार द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर विचार करने हेतु समान रूप से सक्षम है। तदनुसार, यह न्यायालय केरल, कर्नाटक, इलाहाबाद तथा आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को अनुमोदित एवं यथावत रखता है तथा इस संबंध में बॉम्बे, कलकत्ता, मद्रास, मध्य प्रदेश एवं उत्तराखंड उच्च न्यायालयों के निर्णयों को अपास्त करता है। परिणामतः, सुरक्षित लेनदारों (बैंकों) द्वारा प्रतिपादित भावी प्रवर्तन के तर्क पर विचार करना आवश्यक नहीं रह जाता। (कंडिका 48) [222-जी-एच; 223-ए]

मोहम्मद अशरफ एवं अन्य बनाम भारत संघ (यू.ओ.आई.) एवं एक अन्य, ए.आई.आर. (2009) केरल 14; राधाकृष्णन, वी.एन. बनाम केरल राज्य एवं अन्य, एम.ए.एन.उ./के.ई./0677/2008 (सी.आर. एम.सी. संख्या 4369 वर्ष 2008, दिनांक 20.11.2008); कावेरी मार्केटिंग बनाम सरस्वती को-ऑप. बैंक लिमिटेड, 111 (2013) बी.सी. 582; मेसर्स टी.आर. ज्वेलरी एवं एक अन्य बनाम भारतीय स्टेट बैंक एवं अन्य, ए.आई.आर. (2016) ए.पी. 125 (एफ.बी.); अभिषेक मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, ए.आई.आर. (2016) इलाहाबाद 210 — अनुमोदित।

इंडसइंड बैंक लिमिटेड (पूर्व में अशोक लेलैंड फाइनेंस लिमिटेड के नाम से ज्ञात), अपने विधिक कार्यकारी रविन्द्रकुमार प्रकाश भागोदेदेव के माध्यम से बनाम महाराष्ट्र राज्य, पुलिस स्टेशन के माध्यम से 2008 (110) बॉम्बे लॉ रिपोर्टर 2880 (निर्णीत दिनांक 22.04.2008); अर्जुन अर्बन को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड, सोलापुर बनाम मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, सोलापुर एवं अन्य 2009 (5) महाराष्ट्र लॉ जर्नल 380; दिनेश कुमार अग्रवाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 2013 (1) सी.एच.एन. 671; के. अरोकीयाराज बनाम मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, श्रीविल्लिपुथुर, विरुधुनगर जिला तथा हाउसिंग डेवलपमेंट फाइनेंस कॉरपोरेशन लिमिटेड ए.आई.आर. (2013) मद्रास 206; टी.सी. रामदास एवं अन्य बनाम मुख्य प्रबंधक एवं अधिकृत अधिकारी, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य ए.आई.आर. (2015) मद्रास 67; श्याम सुंदर रोहरा बनाम इंडसइंड बैंक ए.आई.आर. (2017) मध्य प्रदेश 36; दीपक अग्रवाल बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य मैनु/यू.सी./0012/2012; आंध्रा बैंक एवं अन्य बनाम श्री दिनेश कुमार अग्रवाल एवं अन्य (2013) 4 सी.एच.एन. 95 — अनुमोदित नहीं।

शंकरलाल अग्रवाल एवं अन्य बनाम शंकरलाल पोद्दार एवं अन्य ए.आई.आर. (1965) एस.सी. 507; दिल्ली नगर निगम बनाम शिव शंकर (1971) 1 एस.सी.सी. 442 : [1971] 3 एस.सी.आर. 607; रतन लाल अडुकिया बनाम भारत संघ (1989) 3 एस.सी.सी. 537 : [1989] 3 एस.सी.आर. 440; किशोरभाई खमाचंद गोयल बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य (2003) 12 एस.सी.सी. 274 : [2003] 5 अनुपूरक एस.सी.आर. 1; मेसर्स यूनिक ब्यूटाइल ट्यूब इंडस्ट्रीज प्रा. लि. बनाम उत्तर प्रदेश वित्तीय निगम एवं अन्य ए.आई.आर. (2003) एस.सी. 2103 : [2002] 5 अनुपूरक एस.सी.आर. 666; दिल्ली वित्तीय निगम एवं अन्य बनाम राजीव आनंद एवं अन्य (2004) 11 एस.सी.सी. 625; ए.एन. राय, पुलिस आयुक्त एवं अन्य बनाम सुरेश शम

सिंह (2006) 5 एस.सी.सी. 745 : [2006] 3 अनुपूरक एस.सी.आर. 165; स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम वी. नोबल कुमार एवं अन्य (2013) 9 एस.सी.सी. 620 : [2013] 10 एस.सी.आर. 762; श्री भगवती स्टील रोलिंग मिल्स बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त एवं अन्य (2016) 3 एस.सी.सी. 643 : [2015] 12 एस.सी.आर. 332; अधिकृत अधिकारी, स्टेट बैंक ऑफ त्रावणकोर एवं अन्य बनाम मैथ्यू के.सी. (2018) 3 एस.सी.सी. 85 : [2018] 1 एस.सी.आर. 233; सीमा शुल्क आयुक्त (आयात), मुंबई बनाम दिलीप कुमार एंड कंपनी एवं अन्य (2018) 9 एस.सी.सी. 1 : [2018] 7 एस.सी.आर. 1191; सिंधी एजुकेशन सोसाइटी एवं अन्य बनाम मुख्य सचिव, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार एवं अन्य (2010) 8 एस.सी.सी. 49 : [2010] 8 एस.सी.आर. 81; रानी कुसुम (श्रीमती) बनाम कंचन देवी (श्रीमती) एवं अन्य (2005) 6 एस.सी.सी. 705 : [2005] 2 अनुपूरक एस.सी.आर. 752; विनय त्यागी बनाम इरशाद अली उर्फ दीपक एवं अन्य (2013) 5 एस.सी.सी. 762 : [2012] 13 एस.सी.आर. 1005; विशाल एन. कलसारिया बनाम बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य (2016) 3 एस.सी.सी. 762 : [2016] 1 एस.सी.आर. 419; आंध्र प्रदेश राज्य बनाम पोलमाला राजू उर्फ राजाराव (2000) 7 एस.सी.सी. 75 : [2000] 2 अनुपूरक एस.सी.आर. 329; श्री नासिरुद्दीन बनाम राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण (1975) 2 एस.सी.सी. 671 : [1976] 1 एस.सी.आर. 505; भूदान सिंह एवं अन्य बनाम नबी बक्स एवं अन्य (1969) 2 एस.सी.सी. 481 : [1970] 2 एस.सी.आर. 10; के.पी. वर्गीज बनाम आयकर अधिकारी, एर्नाकुलम एवं अन्य (1981) 4 एस.सी.सी. 173 : [1982] 1 एस.सी.आर. 629; आत्मा राम मित्तल बनाम ईश्वर सिंह पुनिया (1988) 4 एस.सी.सी. 284 : [1988] 2 अनुपूरक एस.सी.आर. 528; मेसर्स गिरधारी लाल एंड संस बनाम बलबीर नाथ माथुर एवं अन्य (1986) 2 एस.सी.सी. 237 : [1986] 1 एस.सी.आर. 383; मार्टिया केमिकल्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (2004) 4 एस.सी.सी. 311 : [2004] 3 एस.सी.आर. 982; ट्रांसकोर बनाम भारत संघ एवं अन्य (2008) 1 एस.सी.सी. 125 : [2006] 9 अनुपूरक एस.सी.आर. 785; बैंक ऑफ इंडिया बनाम पंकज दिलीपभाई हेमनानी एवं अन्य ए.आई.आर. 2007 गुजरात 201; सोलारिस सिस्टम्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स एवं अन्य आई.एल.आर. 2006 केरल 645; बेंगलुरु जल आपूर्ति एवं सीवरेज बोर्ड बनाम ए. राजप्पा एवं अन्य (1978) आई.एल.एल.जे. 349 एस.सी.; एन.ई.पी.सी. माइकाॅन लिमिटेड बनाम मैगना लीजिंग लिमिटेड 1999 क्रि.एल.जे.

2883; इन्को यूरोप लिमिटेड एवं अन्य बनाम फर्स्ट चॉइस डिस्ट्रीब्यूशन (एक फर्म) एवं अन्य 1999 क्रि.एल.जे. 2883; पद्मसुंदरा राव एवं अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य (2002) 255 आई.टी.आर. 147 (एस.सी.); नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम लक्ष्मी नारायण धूत 2007 (2) के.एल.टी. 470 (एस.सी.); भारतीय रिजर्व बैंक एवं अन्य बनाम पीयरलेस जनरल फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड एवं अन्य (1996) 1 एस.सी.सी. 642 : [1996] 1 एस.सी.आर. 58; केहर सिंह एवं अन्य बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) (1988) 3 एस.सी.सी. 609 : [1988] 2 अनुपूरक एस.सी.आर. 24; मैथ्यू वर्गीज बनाम एम. अमृता कुमार एवं अन्य (2014) 5 एस.सी.सी. 610 : [2014] 2 एस.सी.आर. 736; ट्रेड वेल एवं अन्य बनाम इंडियन बैंक एवं अन्य (2007) क्रि. एल. जे. 2544; रोनित निरमन प्रा. लि. बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य ए.एस.टी. 1337/2011 (निर्णीत दिनांक 18 अक्टूबर, 2011); के. आर. चन्द्रशेखरन बनाम भारत संघ 2012 (2) सी.डब्ल्यू.सी. 115; इंडियन ओवरसीज बैंक बनाम श्री अरविन्द स्टील्स लिमिटेड 2009 (1) सी.टी.सी. 341; आधिकारिक परिसमापक, उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड बनाम इलाहाबाद बैंक एवं अन्य (2013) 4 एस.सी.सी. 381 : [2013] 4 एस.सी.आर. 207; इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस (सी.एस.एस.) एसोसिएशन, उत्तर प्रदेश एवं अन्य बनाम भारत संघ (1993) अनुपूरक 1 एस.सी.सी. 730 : [1992] 2 अनुपूरक एस.सी.आर. 389; नासिरुद्दीन एवं अन्य बनाम सीता राम अग्रवाल (2003) 2 एस.सी.सी. 577 : [2003] 1 एस.सी.आर. 634; गुजरात उच्च न्यायालय एवं अन्य बनाम गुजरात किसान मजदूर पंचायत एवं अन्य (2003) 4 एस.सी.सी. 712 : [2003] 2 एस.सी.आर. 799; प्रकाश कुमार उर्फ प्रकाश भुट्टो बनाम गुजरात राज्य (2005) 2 एस.सी.सी. 409 : [2005] 1 एस.सी.आर. 408; न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम नुस्ली नेविल वाडिया एवं अन्य (2008) 3 एस.सी.सी. 279 : [2007] 13 एस.सी.आर. 598 — संदर्भित।

हर्षद गोवर्धन सोन्धागर बनाम इंटरनेशनल एसेट्स रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड एवं अन्य (2014) 6 एस.सी.सी. 1 : [2014] 11 एस.सी.आर. 605 — विभेदित।

ऑल इंडिया जजेस एसोसिएशन एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (2002) 4 एस.सी.सी. 247 : [2002] 2 एस.सी.आर. 712; जनार्धन बनाम महाराष्ट्र राज्य (1978) 2 एस.सी.सी. 465 : [1978] 3 एस.सी.आर. 586 — अवलंबित।

होलम्स बनाम ब्रैडफील्ड रूरल डिस्ट्रिक्ट काउंसिल 1949 (1) ऑल ई.आर. 381;  
सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स लिमिटेड बनाम ऐशर (1949) 2 ऑल ई.आर. 155; एम.  
पेंटियाह बनाम मुद्दाला वीरमल्लप्पा [1961] 2 एस.सी.आर. 295 — संदर्भित।

नजीर संदर्भ

ए.आई.आर. (2009) केरल 14	अनुमोदित	कंडिका 3
2008 (110) बी.ओ.एम. एल.आर. 2880		
(निर्णय दिनांक 22.04.2008)	अनुमोदित नहीं	कंडिका 5
2009 (5) एम.एच. एल.जे. 380	अनुमोदित नहीं	कंडिका 5
111 (2013) बी.सी. 582	अनुमोदित	कंडिका 6
2013 (1) सी.एच.एन. 671	अनुमोदित नहीं	कंडिका 6
ए.आई.आर. (2013) मद्रास 206	अनुमोदित नहीं	कंडिका 6
ए.आई.आर. (2015) मद्रास 67	अनुमोदित नहीं	कंडिका 6
ए.आई.आर. (2017) एम.पी. 36	अनुमोदित नहीं	कंडिका 6
(2013) 4 सी.एच.एन. 95	अनुमोदित नहीं	कंडिका 6
ए.आई.आर. (2016) ए.पी. 125 (एफ.बी.)	अनुमोदित	कंडिका 7
ए.आई.आर. (2016) ऑल. 210	अनुमोदित	कंडिका 7
ए.आई.आर. (1965) एस.सी. 507	संदर्भित	कंडिका 11
[1971] 3 एस.सी.आर. 607	संदर्भित	कंडिका 11
[1989] 3 एस.सी.आर. 440	संदर्भित	कंडिका 11
[2003] 5 पूरक एस.सी.आर. 1	संदर्भित	कंडिका 11
[2002] 5 पूरक एस.सी.आर. 666	संदर्भित	कंडिका 11
(2004) 11 एस.सी.सी. 625	संदर्भित	कंडिका 11

[2006] 3 पूरक एस.सी.आर. 165	संदर्भित	कंडिका 11
[2013] 10 एस.सी.आर. 762	संदर्भित	कंडिका 11
[2015] 12 एस.सी.आर. 332	संदर्भित	कंडिका 11
[2018] 1 एस.सी.आर. 233	संदर्भित	कंडिका 11
[2018] 7 एस.सी.आर. 1191	संदर्भित	कंडिका 11
[2002] 2 एस.सी.आर. 712	आश्रित	कंडिका 14
[2010] 8 एस.सी.आर. 81	संदर्भित	कंडिका 15
[2005] 2 पूरक एस.सी.आर. 752	संदर्भित	कंडिका 15
[2012] 13 एस.सी.आर. 1005	संदर्भित	कंडिका 15
[2016] 1 एस.सी.आर. 419	संदर्भित	कंडिका 17
[2000] 2 पूरक एस.सी.आर. 329	संदर्भित	कंडिका 17
[1976] 1 एस.सी.आर. 505	संदर्भित	कंडिका 17
[1970] 2 एस.सी.आर. 10	संदर्भित	कंडिका 17
[1982] 1 एस.सी.आर. 629	संदर्भित	कंडिका 17
[1988] 2 पूरक एस.सी.आर. 528	संदर्भित	कंडिका 17
[1986] 1 एस.सी.आर. 383	संदर्भित	कंडिका 17
[2004] 3 एस.सी.आर. 982	संदर्भित	कंडिका 21
[2006] 9 पूरक एस.सी.आर. 785	संदर्भित	कंडिका 21
ए.आई.आर. 2007 गुज. 201	संदर्भित	कंडिका 21
आई.एल.आर. 2006 केर. 645	संदर्भित	कंडिका 21
1949 (1) ऑल ई.आर. 381	संदर्भित	कंडिका 21

(1949) 2 ऑल ई.आर. 155	संदर्भित	कंडिका 21
(1961) 2 एस.सी.आर. 295	संदर्भित	कंडिका 21
(1978) आई.एल.एल.जे. 349 एस.सी.	संदर्भित	कंडिका 21
1999 क्रि.एल.जे. 2883	संदर्भित	कंडिका 21
(2002) 255 आई.टी.आर. 147 (एस.सी.)	संदर्भित	कंडिका 21
2007 (2) के.एल.टी. 470 (एस.सी.)	संदर्भित	कंडिका 21
[1996] 1 एस.सी.आर. 58	संदर्भित	कंडिका 21
[1988] 2 पूरक एस.सी.आर. 24	संदर्भित	कंडिका 21
[2014] 2 एस.सी.आर. 736	संदर्भित	कंडिका 22
(2007) क्रि. एल.जे. 2544	संदर्भित	कंडिका 25
2012 (2) सी.डब्ल्यू.सी. 115	संदर्भित	कंडिका 28
2009 (1) सी.टी.सी. 341	संदर्भित	कंडिका 29
[2013] 4 एस.सी.आर. 207	संदर्भित	कंडिका 29
[1992] 2 पूरक एस.सी.आर. 389	संदर्भित	कंडिका 29
[2003] 1 एस.सी.आर. 634	संदर्भित	कंडिका 29
[2003] 2 एस.सी.आर. 799	संदर्भित	कंडिका 29
[2005] 1 एस.सी.आर. 408	संदर्भित	कंडिका 29
[2007] 13 एस.सी.आर. 598	संदर्भित	कंडिका 29
[2014] 11 एस.सी.आर. 605	भिन्न किया गया	कंडिका 38
[1978] 3 एस.सी.आर. 586	आश्रित	कंडिका 45

दिनांक 27.08.2013 के उस निर्णय एवं आदेश से, जो मद्रास उच्च न्यायालय की मदुरै खंडपीठ द्वारा विनिर्दिष्ट आदेश याचिका अर्थात् डब्ल्यू.पी. (एम.डी.) संख्या 7155/2012 में पारित किया गया।

साथ में

2019 की दीवानी अपील संख्याएँ 7554-7555, 7557, 7558, 7560-7561,

2019 की आपराधिक अपील संख्याएँ 900, 945, 1463-1464, 1465, 1478, 1466, 1467, 1468, 1469, 1470, 1471, 1472, 1473, 1475, 1476, 1477।

ध्रुव मेहता, सुधिवासुदेवन, जयदीप गुप्ता, जयंथ मुथराज, वरिष्ठ अधिवक्ता; हिमांशु मुंशी, मनीष गरानी, अविनाश कुमार भारती, संजय कपूर, सुश्री मेघा कर्नवाल, भरत गंगाधरन, कौसर हुसैन, सुश्री शुभा कपूर, वी. बालाजी, मेसर्स असैथांबी, सी. कन्नन, राकेश के. शर्मा, श्रीराम पी., एम. एस. विष्णु शंकर, अंशुमान अशोक, जी. प्रकाश, जिष्णु एम. एल., सुश्री प्रियंका प्रकाश, सुश्री बीना प्रकाश, गर्वेश काबरा, सुश्री पूजा काबरा, ए. सी. फिलिप, राजवर्धन सिंह, राबिन मजुमदार, पी. वी. दिनेश, सुश्री सिंधु टी. पी., मुकुंद पी. पुन्नी, बिनेश के., लक्ष्मण आर. एस., अश्विनी कुमार सिंह, हीरेन दासन, उदय गुप्ता, चंद कुरैशी, हरीश दासन, एम. के. त्रिपाठी, अनंगा भट्टाचार्य, रोहित राव एन., सुश्री देवहृति तमुली, शौर्य गर्ग, मेसर्स वेरितास लेजिस, गोविंद मनोहरन, मनु कृष्णन, ए. कार्तिक, बी. सुलैमान, बिजू पी. रमन, सुश्री उषा नंदिनी वी., रॉय अब्राहम, सुश्री रीना रॉय, सुश्री सीमा जैन, अखिल अब्राहम, हिमिंदर लाल, कुरियाकोसे वर्गीज़, दिव्यांग अग्रवाल, सुश्री पियुषा सिंह, मेसर्स के.एम.एन.पी. लॉ, पी. वी. योगेश्वरन, आशीष कुमार उपाध्याय, वाई. लोकेश, बाबुल कुमार, डॉ. ललित भसीन, सुश्री नीना गुप्ता, सुश्री पलक चड्ढा, धवल जैन, मुदित शर्मा, वी. प्रभाकर, सुश्री ज्योति पराशर, एन. जे. रामचंद्र, एस. राजप्पा, राजेश कुमार, आई. अनंत गौतम, अन्नमोल मेहता, सुश्री साक्षी गौर, सुश्री खुशबू अग्रवाल (मेसर्स मिटर एंड मिटर कंपनी के लिए), ई. एस. ईश्वरन, सजिथ पी. वारियर, हरिस बीरन, मुश्ताक सलीम, उस्मान घानी खान, राधा श्याम जेना, के. राजीव, सरफराज़ खान, फिरासत अली सिद्दीकी, अरविंद कुमार, विजय पाल, राम स्वरूप शर्मा, जनेन्द्र लाल, सुश्री यास्मिन तरापोर, मेसर्स जनेन्द्र लाल एंड कंपनी, पी. आई. जोसे, सुश्री पी. एस. चंद्रलेखा, फिलिप के. वर्गीज़, अरविंदह एस., संजय कपूर, भरत गंगाधरन, अधिवक्ता—उपस्थित पक्षकारों की ओर से।

न्यायालय का निर्णय ए. एम. खानविलकर, न्यायमूर्ति द्वारा दिया गया।

1. विलम्ब की क्षमा की जाती है। विशेष अनुमति याचिकाओं में अनुमति प्रदान की जाती है।

2. इन अपीलों में निहित मूल प्रश्न यह है कि क्या मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी (संक्षेप में "सी.जे.एम.") वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (संक्षेप में "2002 अधिनियम") की धारा 14 के अंतर्गत सुरक्षित लेनदार के अनुरोध को संसाधित कर सुरक्षित आस्ति का कब्जा दिलाने हेतु सक्षम है। इस प्रश्न पर विभिन्न उच्च न्यायालयों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रहे हैं। बॉम्बे, कलकत्ता, मद्रास, मध्य प्रदेश तथा उत्तराखंड उच्च न्यायालयों ने उक्त प्रावधान की व्याख्या इस प्रकार की है कि महानगरीय क्षेत्रों में केवल मुख्य महानगरीय दंडाधिकारी (संक्षेप में "सी.एम.एम.") तथा गैर-महानगरीय क्षेत्रों में जिला दंडाधिकारी (संक्षेप में "डी.एम.") ही ऐसे अनुरोधों पर विचार करने के लिए सक्षम हैं। दूसरी ओर, केरल, कर्नाटक, इलाहाबाद तथा आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालयों ने उसी प्रावधान का विपरीत निर्वचन करते हुए यह माना है कि यह प्रावधान गैर-महानगरीय क्षेत्रों में सी.जे.एम. को 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग से वंचित या निषिद्ध नहीं करता।

3. प्रारंभिक निर्णय केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम की खंडपीठ द्वारा **मुहम्मद अशरफ एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य** में दिया गया। न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि 2002 अधिनियम की धारा 14 महानगरीय क्षेत्रों के संदर्भ में सी.एम.एम. तथा गैर-महानगरीय क्षेत्रों के संदर्भ में डी.एम. का स्पष्ट उल्लेख करती है। इसके पश्चात न्यायालय ने यह अभिवेचित किया कि गैर-महानगरीय क्षेत्रों में सी.जे.एम. की शक्तियाँ तथा महानगरीय क्षेत्रों में सी.एम.एम. की शक्तियाँ समान एवं एकरूप हैं (केवल इतना अंतर है कि सी.एम.एम. महानगरीय क्षेत्रों में तथा सी.जे.एम. गैर-महानगरीय क्षेत्रों में शक्ति का प्रयोग करते हैं); तथा "सी.जे.एम." एवं "सी.एम.एम." अभिव्यक्तियाँ, उनके अधिकार-क्षेत्र के क्षेत्र के आधार पर, परस्पर विनिमेय एवं समानार्थी हैं। निर्वचन की प्रक्रिया के माध्यम से न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि गैर-महानगरीय क्षेत्रों में, डी.एम. के अतिरिक्त, सी.जे.एम. भी 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने हेतु सक्षम है। इस निर्णय के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष अपील विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 1671/2009

के रूप में दायर की गई, जिसे दिनांक 02 फरवरी, 2009 को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप का कोई आधार स्थापित नहीं हुआ।

4. इसके शीघ्र पश्चात्, केरल उच्च न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने *राधाकृष्णन, वी.एन. बनाम केरल राज्य एवं एक अन्य*<sup>2</sup> में, *मुहम्मद अशरफ़* (उपरोक्त) में अपनाए गए दृष्टिकोण को पुनः दोहराया और मामले को पुनर्विचार हेतु पूर्ण पीठ को संदर्भित करने से इंकार कर दिया।

5. तथापि, लगभग उसी समय, बॉम्बे उच्च न्यायालय (औरंगाबाद पीठ) ने *इंडसइंड बैंक लि. (पूर्व में अशोक लेलेंड फाइनेंस लि. के नाम से ज्ञात) अपने विधिक कार्यपालक के माध्यम से, रविंद्रकुमार प्रकाश भारगोदेव बनाम महाराष्ट्र राज्य, पुलिस स्टेशन के माध्यम से*<sup>3</sup> में, सर्वथा विपरीत दृष्टिकोण अपनाया। यह धारण किया गया कि "सी.एम.एम." शब्द के स्थान पर "सी.जे.एम." शब्द को प्रतिस्थापित करना खुला नहीं है। क्योंकि 2002 अधिनियम में ऐसा कोई संकेत नहीं है कि विधायिका ने महानगरीय क्षेत्रों के बाहर सी.जे.एम. को सशक्त करने का अभिप्राय रखा हो, यद्यपि महानगरीय क्षेत्रों में ऐसे अनुरोध से निपटने हेतु न्यायिक अधिकारी (सी.एम.एम.) को शक्ति प्रदान की गई थी। पुनः, *अर्जुन अर्बन को-ऑपरेटिव बैंक लि., सोलापुर बनाम मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, सोलापुर एवं अन्य*<sup>4</sup> में, बॉम्बे उच्च न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि 2002 अधिनियम की धारा 14, स्पष्ट एवं निर्विवाद शब्दों में, मामले की प्रकृति के अनुसार, केवल सी.एम.एम. अथवा डी.एम. द्वारा शक्तियों के प्रयोग को सीमित करती है।

6. तथापि, 2013 में, कर्नाटक उच्च न्यायालय ने *कावेरी मार्केटिंग बनाम सरस्वती को-ऑप. बैंक लि.*<sup>5</sup> में वही दृष्टिकोण अपनाया जो केरल उच्च न्यायालय ने अपनाया था, कि सी.जे.एम. भी 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। किंतु, कलकत्ता उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने *दिनेश कुमार अग्रवाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य*<sup>6</sup> में तथा मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने *के. अरोक्कियाराज बनाम मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, श्रीविल्लिपुथुर, विरुधुनगर जिला एवं हाउसिंग डेवलपमेंट फाइनेंस*

2 एम.ए.एन.उ./के.ई./0677/2008 (आपराधिक विविध वाद सं. 4369/2008, दिनांक 20.11.2008)

3 2008 (110) बी.ओ.एम. एल.आर. 2880 (निर्णीत दिनांक 22.04.2008)

4 2009 (5) एम.एच. एल.जे. 380

5 111 (2013) बीसी 582

6 2013 (1) सीएचएन 671

*कॉर्पोरेशन लिमिटेड* में, बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए भिन्न दृष्टिकोण को स्वीकार किया और यह धारण किया कि, जैसा भी मामला हो, केवल सी.एम.एम. अथवा डी.एम. ही 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं। इसके पश्चात्, मद्रास उच्च न्यायालय ने *टी.सी. रमादास एवं अन्य बनाम मुख्य प्रबंधक एवं अधिकृत अधिकारी, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य*<sup>7</sup> में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने *श्याम सुंदर रोहरा बनाम इंडसइंड बैंक*<sup>8</sup> में, उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल ने *दीपक अग्रवाल बनाम उत्तराखण्ड राज्य एवं अन्य*<sup>9</sup> में तथा कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने *आंध्रा बैंक एवं अन्य बनाम श्री दिनेश कुमार अग्रवाल एवं अन्य*<sup>10</sup> में भी यह धारण किया कि, मामले की प्रकृति के अनुसार, केवल सी.एम.एम. अथवा डी.एम. ही 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं।

7. जबकि तेलंगाना राज्य तथा आंध्र प्रदेश राज्य के लिए हैदराबाद स्थित न्यायिक उच्च न्यायालय ने *मेसर्स टी.आर. ज्वैलरी एवं अन्य बनाम भारतीय स्टेट बैंक एवं एक अन्य*<sup>11</sup> में तथा इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने *अभिषेक मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य*<sup>12</sup> में, व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा यह मत व्यक्त किया कि सी.जे.एम. भी 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सक्षम है।

8. उधारकर्ता अथवा उधारकर्ताओं के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति यह तर्क प्रस्तुत करेंगे कि 2002 के अधिनियम की धारा 14 की शाब्दिक व्याख्या को वरीयता दी जानी चाहिए। उस स्थिति में, सुरक्षित लेनदार केवल महानगरीय क्षेत्रों में सी.एम.एम. तथा गैर-महानगरीय क्षेत्रों में डी.एम. की सहायता से ही सुरक्षित आस्ति अथवा संपत्ति का कब्जा प्राप्त कर सकता है (अन्य उपायों द्वारा संपत्ति की वसूली का सहारा लेने के स्थान पर)। चूँकि यह प्रावधान एकात्मक है, इसे किसी अन्य प्रकार से व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। ऐसा करना विधायी आशय के प्रतिकूल होगा। यह अनुमान किया जाता है कि संसद को विद्यमान विधियों का पूर्ण ज्ञान था तथा वह दण्ड प्रक्रिया संहिता एवं अन्य विधियों के अधीन

7 एआईआर (2013) मद्र. 206

8 एआईआर (2015) मद्र. 67

9 एआईआर (2017) म.प्र. 36

10 एम.ए.एन.उ./यू.सी./0012/2012

11 (2013) 4 सीएचएन 95

12 एआईआर (2016) ए.पी. 125 (एफबी)

13 एआईआर (2016) इलाहाबाद 210

सी.एम.एम. और डी.एम. द्वारा प्रयुक्त शक्तियों के क्षेत्राधिकार के अंतर अथवा समानता के प्रति सजग थी। ऐसी जागरूकता के बावजूद, संसद ने जानबूझकर उस प्राधिकारी की स्पष्ट पहचान करना उचित समझा, जो 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत सुरक्षित लेनदार के आवेदन/आवेदनों पर विचार कर सके। इस दृष्टि से, यह प्रावधान *नामोदिष्ट व्यक्ति* के रूप में प्राधिकारी के निर्धारण का स्वरूप धारण करता है, अर्थात् संबंधित क्षेत्र के लिए सी.एम.एम. एवं डी.एम.।

9. यदि ऐसा है, तो विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि न्यायालय के लिए यह खुला नहीं है कि वह व्याख्यात्मक प्रक्रिया का सहारा लेकर सी.जे.एम. जैसे किसी अन्य प्राधिकारी को केवल इस आधार पर सम्मिलित करे कि दण्ड प्रक्रिया संहिता तथा अन्य विधियों के अधीन सी.जे.एम. और सी.एम.एम. द्वारा निर्वहन किए जाने वाले कार्य समान हैं। 2002 के अधिनियम की धारा 14 के रूप में स्पष्ट एवं निर्विवाद प्रावधान के आलोक में *छूटा हुआ मामला* के सिद्धांत को लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं है। अतः दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन सी.एम.एम. और सी.जे.एम. द्वारा निर्वहन किए जाने वाले कार्यों की समानता का कोई महत्व नहीं है। बल्कि, न्यायालय को उक्त उक्ति *“जब शब्दों में कोई अस्पष्टता न हो, तो इच्छा या मंशा का प्रश्न स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए”* का अनुसरण करते हुए विधि की साधारण भाषा को वरीयता देनी चाहिए। न्यायिक अधिकारियों के पदानुक्रम के बीच भेद को प्रदर्शित करने के लिए एक सारणी पर भी निर्भर किया गया है, जो संबंधित क्षेत्र में गैर-न्यायिक दंडाधिकारी और न्यायिक दंडाधिकारी के रूप में उनके कार्यों के आधार पर स्पष्ट भेद दर्शाती है। जिला दंडाधिकारी का पद मूलतः कार्यकारी कार्यों का निर्वहन करता है और गैर-न्यायिक दंडाधिकारी की श्रेणी में आता है। दूसरी ओर, सी.एम.एम. या सी.जे.एम. का पद कार्यकारी तथा न्यायिक दोनों प्रकार के कार्यों को समाहित करता है। यह भेद महत्वपूर्ण है और यह मानना होगा कि संसद इस भेद से भली-भांति अवगत थी। यह भी तर्क दिया गया है कि संसद ने विभिन्न अधिनियमों में, जिनमें रुग्ण औद्योगिक कंपनियां (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985—धारा 29, बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949—धारा 45 एस, भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक अधिनियम, 1984—धारा 51, राष्ट्रीय आवास बैंक अधिनियम, 1987—धारा 36-च, कंपनी अधिनियम, 1956—धारा 10 एफ पी, कंपनी अधिनियम, 2013—धारा 429 तथा भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक अधिनियम, 1989—धारा 39 सम्मिलित हैं, समान प्रकार के प्रावधान बनाए हैं, जिनके द्वारा संपत्ति के कब्जे हेतु सहायता प्राप्त करने के लिए सी.एम.एम./डी.एम. को अधिकार प्रदान किया गया है।

10. यह प्रतिपादित किया गया है कि कोई भी अन्य दृष्टिकोण अपनाने से 2002 अधिनियम की धारा 14 को पुनः लिखने की आवश्यकता पड़ेगी और उस प्रक्रिया में विधायी आशय के विरुद्ध आघात पहुँचेगा। इससे बचा जाना आवश्यक है। यह भी आग्रह किया गया है कि धारा 14 में प्रयुक्त "सी.एम.एम." और "डी.एम." अभिव्यक्तियों तथा उसी अधिनियम की धारा 30 में प्रयुक्त "महानगर दंडाधिकारी" अथवा "न्यायिक दंडाधिकारी" (जैसा कि मामला हो) के बीच किया गया प्रतिविरोध ध्यान में रखा जाए, जो अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराधों का संज्ञान लेने हेतु प्राधिकारी को संदर्भित करता है।

11. उपरोक्त तर्कों को सुदृढ़ करने हेतु *शंकरलाल अग्रवाल एवं अन्य बनाम शंकरलाल पोद्दार एवं अन्य*<sup>14</sup>, *दिल्ली नगर निगम बनाम शिव शंकर*<sup>15</sup>, *रतन लाल अडुकिया बनाम भारत संघ*<sup>16</sup>, *किशोरभाई खमाचंद गोयल बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य*<sup>17</sup>, *एम/एस यूनिक ब्यूटाइल ट्यूब इंडस्ट्रीज प्रा. लि. बनाम उत्तर प्रदेश वित्तीय निगम एवं अन्य*<sup>18</sup>, *दिल्ली वित्तीय निगम एवं अन्य बनाम राजीव आनंद एवं अन्य*<sup>19</sup>, *ए.एन. राय, पुलिस आयुक्त एवं अन्य बनाम सुरेश शम सिंह*<sup>20</sup>, *स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम वी. नोबल कुमार एवं अन्य*<sup>21</sup>, *हर्षद गोवर्धन सोन्धागर बनाम इंटरनेशनल एसेट्स रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड एवं अन्य*<sup>22</sup>, *श्री भगवती स्टील रोलिंग मिल्स बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त एवं अन्य*<sup>23</sup>, *अधिकृत अधिकारी, स्टेट बैंक ऑफ त्रावणकोर एवं अन्य बनाम मैथ्यू के.सी.*<sup>24</sup>, *सीमा शुल्क आयुक्त (आयात), मुंबई बनाम दिलीप कुमार एंड कंपनी एवं अन्य*<sup>25</sup> पर भरोसा किया गया है।

12. इसके विपरीत, सुरक्षित लेनदार (बैंक) तथा नीलामी क्रेता केरल, आंध्र प्रदेश, इलाहाबाद तथा कर्नाटक के उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के अनुरूप अपने

14 ए.आई.आर. (1965) एस.सी. 507

15 (1971) 1 एस.सी.सी. 442

16 (1989) 3 एस.सी.सी. 537

17 (2003) 12 एस.सी.सी. 274

18 ए.आई.आर. (2003) एस.सी. 2103

19 (2004) 11 एस.सी.सी. 625

20 (2006) 5 एस.सी.सी. 745

21 (2013) 9 एस.सी.सी. 620

22 (2014) 6 एस.सी.सी. 1

23 (2016) 3 एस.सी.सी. 643

24 (2018) 3 एस.सी.सी. 85

25 (2018) 9 एस.सी.सी. 1

तर्क प्रस्तुत करेंगे। उनके अनुसार, 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत प्रक्रिया सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने के लिए सुरक्षित लेनदार द्वारा प्रारंभ की जा सकती है। आवेदन सुरक्षित लेनदार द्वारा दायर किया जाना आवश्यक है, जिसे उसमें निहित उपबंधों के अनुपालन को दर्शाने वाले शपथपत्र द्वारा समर्थित किया जाना होता है। अतः 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत परिकल्पित जाँच, जिसे सी.एम.एम. अथवा डी.एम. द्वारा किया जाना है, न्यूनतम और मूलभूत प्रकृति की है। इसका उद्देश्य केवल यह संतुष्ट होना है कि संबंधित आवेदन में सुरक्षित लेनदार द्वारा कथित तथ्यात्मक स्थिति तथा उसके साथ संलग्न शपथपत्र सही है। यह प्रतिद्वंद्वी पक्षकारों के अधिकारों और दायित्वों के संबंध में निर्णय करने हेतु कोई न्याय निर्णयात्मक प्रक्रिया नहीं है। इस जाँच का स्वरूप मूलतः प्रशासनिक अथवा कार्यपालक शक्तियों के प्रयोग का है। उप-धारा (1-ए) डी.एम. अथवा सी.एम.एम. को अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी को कब्जा लेने के लिए अधिकृत करने में सक्षम बनाती है।

13. दंड प्रक्रिया संहिता की योजना के अनुसार, मुख्य न्यायाधिकरण न्यायाधीश (सीएमएम) और मुख्य न्यायाधिकरण न्यायाधीश (सीजेएम) को शक्तियां प्राप्त हैं। सीएमएम और मुख्य न्यायाधिकरण के पद परस्पर परिवर्तनीय हैं और वे अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में, अर्थात् महानगरीय और गैर-महानगरीय क्षेत्रों में, समान कार्य करते हैं। इस न्यायालय के हालिया निर्णय में स्पष्ट किया गया है कि जांच के लिए विवेकपूर्ण दृष्टिकोण आवश्यक है। अतः, गैर-महानगरीय क्षेत्र में सी.जे.एम. द्वारा भी यह प्रभावी रूप से प्रयोग की जा सकती है। 2002 अधिनियम में ऐसा कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है जिससे दंड प्रक्रिया संहिता के उन प्रावधानों की उपेक्षा की जाए, जो क्रमशः सी.एम.एम. और सी.जे.एम. द्वारा शक्तियों के प्रयोग से संबंधित हैं। दूसरी ओर, 2002 अधिनियम की धारा 37 यह स्पष्ट करती है कि दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान पूर्णतः अपवर्जित नहीं किए गए हैं। 2002 अधिनियम की धारा 37 यह प्रतिपादित करती है कि उस समय प्रवृत्त अन्य विधियों का अनुप्रयोग जारी रहेगा और 2002 अधिनियम अथवा उसके अधीन बनाए गए नियम उनके अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अपवर्जन में।

14. यह प्रतिपादित किया गया है कि 2002 अधिनियम "सी.एम.एम." अथवा "डी.एम." शब्दों को परिभाषित नहीं करता। तत्पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(के) पर भरोसा किया गया है, जो "महानगरीय क्षेत्र" अभिव्यक्ति को परिभाषित करती है, तथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 3 पर, जो "सी.एम.एम." अथवा "डी.एम." अभिव्यक्तियों को

परिभाषित करती है। यह प्रतिपादित किया गया है कि साक्ष्य के अभिलेखन जैसी न्याय निर्णयात्मक प्रक्रिया केवल न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा ही की जानी आवश्यक है। कार्यपालक दंडाधिकारी केवल कार्यपालक शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि गैर-महानगरीय क्षेत्र में सी.जे.एम. की शक्तियाँ तथा महानगरीय क्षेत्र में सी.एम.एम. की शक्तियाँ समान हैं और इन पदनामों को समानार्थी माना जाता है। अतिरिक्त रूप से, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 12 (न्यायिक दंडाधिकारी एवं अतिरिक्त न्यायिक दंडाधिकारी से संबंधित), धारा 14 (न्यायिक दंडाधिकारी का स्थानीय अधिकार-क्षेत्र), धारा 16 एवं 17 (क्रमशः महानगरीय दंडाधिकारी तथा अतिरिक्त मुख्य महानगरीय दंडाधिकारी से संबंधित) तथा धारा 20 (कार्यपालक दंडाधिकारी के पद से संबंधित) पर भी भरोसा किया गया है। इस न्यायालय के निर्णय *ऑल इंडिया जजेज एसोसिएशन एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य*<sup>26</sup> पर भरोसा करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि सी.जे.एम. और सी.एम.एम. के पद अनिवार्यतः समान माने जाने चाहिए और उन्हें सिविल जज (सीनियर डिवीजन) के एक ही कैडर में रखा जाना चाहिए। *स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक* (उपरोक्त) पर भी यह दिखाने के लिए भरोसा किया गया है कि विभिन्न क्षेत्रीय क्षेत्रों में कार्यरत सी.जे.एम. और सी.एम.एम. के अधिकार-क्षेत्र अथवा शक्तियों में कोई अंतर नहीं है। इस आधार पर यह आग्रह किया गया है कि धारा 14 में प्रयुक्त "सी.एम.एम./डी.एम." अभिव्यक्तियों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि गैर-महानगरीय क्षेत्र में "सी.जे.एम." भी उसमें सम्मिलित समझा जाए।

15. इसके उपरांत *सिंधी एजुकेशन सोसायटी एवं एक अन्य बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार के मुख्य सचिव एवं अन्य*<sup>27</sup>, *रानी कुसुम (श्रीमती) बनाम कंचन देवी (श्रीमती) एवं अन्य*<sup>28</sup> तथा *विनय त्यागी बनाम इरशाद अली उर्फ दीपक एवं अन्य*<sup>29</sup> पर भी भरोसा किया गया है, ताकि इस प्रतिपादन को सुदृढ़ किया जा सके कि 2002 अधिनियम की धारा 14 की ऐसी व्याख्या की जानी चाहिए जो न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाए और उस विधायी लक्ष्य को प्राप्त करे जिसे हासिल करना अभिप्रेत है। धारा 14 की उद्देश्यपरक व्याख्या, जिसके अंतर्गत गैर-महानगरीय क्षेत्र में सी.जे.एम. के पद को भी सम्मिलित माना जाए, विधायी आशय को आगे बढ़ाएगी, क्योंकि इससे सुरक्षित लेनदार को वहीं सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने के लिए सी.जे.एम. के समक्ष जाने में सक्षम बनाया जा सकेगा।

26 (2002) 4 एस.सी.सी. 247

27 (2010) 8 एससीसी 49

28 (2005) 6 एससीसी 705

29 (2013) 5 एससीसी 762

16. यह प्रतिपादित किया गया है कि उधारकर्ता अथवा उधारकर्ताओं के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्तियों को कोई शिकायत करने का अवसर नहीं दिया जा सकता, यदि धारा 14 के अंतर्गत दायर आवेदन पर न्यायिक मन से विचार किया गया हो; और भी इसलिए कि की जाने वाली जाँच की प्रकृति सीमित है। इस संदर्भ में, यह केवल सुरक्षित लेनदार द्वारा किए गए अनुपालनों के सत्यापन तक सीमित है। किसी भी स्थिति में, पीड़ित उधारकर्ता के पास सी.जे.एम. द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध वैधानिक अपील का उपाय उपलब्ध होगा, जैसा कि सी.एम.एम./डी.एम. द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध उपलब्ध होता है। इसी प्रकार, उधारकर्ताओं अथवा उनके माध्यम से दावा करने वाले व्यक्तियों के लिए उपलब्ध सभी विवादित मुद्दे सी.जे.एम. के समक्ष भी उठाए जा सकते हैं, जो विधि के अनुसार सी.एम.एम./डी.एम. द्वारा किए जाने वाले समान कार्य से निपटने के लिए समान रूप से सक्षम होंगे। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि सी.एम.एम. और सी.जे.एम. दोनों समान कार्यों का निर्वहन करते हैं और अपने-अपने क्षेत्रीय अधिकार-क्षेत्र में सभी प्रयोजनों के लिए समकक्ष माने जाते हैं, यह ऐसा मामला नहीं है कि आवेदन किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा संसाधित किया जा रहा हो जो अधीनस्थ हो या ऐसा करने के लिए सक्षम अथवा योग्य न हो।

17. उपरोक्त तर्कों को सुदृढ़ करने हेतु *विशाल एन. कलसारिया बनाम बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य*<sup>30</sup>, *आंध्र प्रदेश राज्य बनाम पोलमाला राजू उर्फ राजाराव*<sup>31</sup>, *श्री नासिरुद्दीन बनाम राज्य परिवहन अपीलीय अधिकरण*<sup>32</sup>, *भूदान सिंह एवं अन्य बनाम नबी बक्स एवं अन्य*<sup>33</sup>, *के.पी. वर्गीज बनाम आयकर अधिकारी, एर्नाकुलम एवं अन्य*<sup>34</sup>, *आत्मा राम मित्तल बनाम ईश्वर सिंह पुनिया*<sup>35</sup> तथा *मेसर्स गिरधारी लाल एंड संस बनाम बलबीर नाथ माथुर एवं अन्य*<sup>36</sup> पर भरोसा किया गया है।

18. यह भी प्रतिपादित किया गया है कि कुछ राज्यों में डी.एम. के कार्य राज्य के उप आयुक्त द्वारा निर्वहन किए जाते हैं, जैसे झारखण्ड राज्य में। अतः, 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत आवेदन पर उच्च न्यायालयों द्वारा की गई व्याख्या, जो गैर-महानगरीय

30 (2016) 3 एससीसी 762

31 (2000) 7 एससीसी 75

32 (1975) 2 एससीसी 671

33 (1969) 2 एससीसी 481

34 (1981) 4 एससीसी 173

35 (1988) 4 एससीसी 284

36 (1986) 2 एससीसी 237

क्षेत्र में सी.जे.एम. को आगे बढ़ने की अनुमति देती है, सभी संबंधित पक्षों के हितों की सेवा करेगी और न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना 2002 अधिनियम के अंतर्गत मामलों के शीघ्र निस्तारण के विधायी आशय को भी प्रभावी बनाएगी। अंततः, यह आग्रह किया गया है कि यदि यह न्यायालय संबंधित उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाए गए उस दृष्टिकोण को स्वीकार करता है कि सी.जे.एम. 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत कार्यवाही से निपटने के लिए सक्षम नहीं है, तो यह न्यायालय भावी प्रभाव से प्रतिलोम के सिद्धांत को लागू कर सकता है और इस प्रयोजन हेतु सी.जे.एम. द्वारा पारित सभी आदेशों को सुरक्षित रख सकता है।

19. हमने श्री ध्रुव मेहता, श्री सुधिवासुदेवन, श्री जयदीप गुसा तथा श्री जयंथ मुथराज, वरिष्ठ अधिवक्तागण; श्री कुरियाकोसे वर्गीज, श्री ए. कार्तिक, श्री ई. ईश्वरन, श्री सजिथ पी. वारियर, श्री गोविंद मनोहरन, सुश्री नीना गुसा, श्री रॉय अब्राहम, श्री फिलिप के. वर्गीज, श्री राकेश के. शर्मा, श्री राधा श्याम जेना, श्री हिमांशु मुंशी, श्री राम स्वरूप शर्मा तथा श्री मुदित शर्मा, अधिवक्तागण को सुना है।

20. हम 2002 अधिनियम की धारा 14 को पुनरुत्पादित करना उपयुक्त समझते हैं। वही इस प्रकार है:—

**“14. सुरक्षित परिसंपत्ति का कब्जा लेने में सुरक्षित लेनदार की सहायता हेतु मुख्य महानगर दंडाधिकारी या जिला दंडाधिकारी—** (1) जहाँ किसी सुरक्षित परिसंपत्ति का कब्जा सुरक्षित लेनदार द्वारा लिया जाना आवश्यक हो, अथवा किसी सुरक्षित परिसंपत्ति को इस अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत सुरक्षित लेनदार द्वारा बेचा या हस्तांतरित किया जाना आवश्यक हो, वहाँ सुरक्षित लेनदार, ऐसी सुरक्षित परिसंपत्ति का कब्जा लेने या उस पर नियंत्रण प्राप्त करने के उद्देश्य से, लिखित रूप में, उस क्षेत्राधिकार के मुख्य महानगर दंडाधिकारी या जिला दंडाधिकारी से अनुरोध कर सकता है, जिसके भीतर ऐसी सुरक्षित परिसंपत्ति अथवा उससे संबंधित दस्तावेज स्थित या पाए जाते हों; और मुख्य महानगर दंडाधिकारी, अथवा जैसा भी मामला हो, जिला दंडाधिकारी, अपने समक्ष किए गए ऐसे अनुरोध पर—

(ए) ऐसी परिसंपत्ति तथा उससे संबंधित दस्तावेजों का कब्जा ले; तथा

(बी) ऐसी परिसंपत्ति तथा दस्तावेजों को सुरक्षित लेनदार को अग्रेषित करे:

1[परंतु यह कि सुरक्षित लेनदार द्वारा किया गया कोई भी आवेदन सुरक्षित लेनदार के

अधिकृत अधिकारी द्वारा विधिवत् सत्यापित शपथपत्र से संलग्न होगा, जिसमें यह घोषित किया जाएगा कि—]

- (i) प्रदान की गई वित्तीय सहायता की समग्र राशि तथा आवेदन दायर किए जाने की तिथि को बैंक का कुल दावा;
- (ii) उधारकर्ता ने विभिन्न परिसंपत्तियों पर प्रतिभूति हित सृजित किया है और बैंक अथवा वित्तीय संस्था के पास ऐसी परिसंपत्तियों पर वैध एवं प्रवर्तनीय प्रतिभूति हित विद्यमान है तथा बैंक अथवा वित्तीय संस्था का दावा परिसीमा अवधि के भीतर है;
- (iii) उधारकर्ता ने विभिन्न परिसंपत्तियों पर प्रतिभूति हित सृजित किया है, जिसके अंतर्गत उप-खंड (ii) में उल्लिखित परिसंपत्तियों का विवरण दिया गया है;
- (iv) उधारकर्ता ने प्रदान की गई वित्तीय सहायता के पुनर्भुगतान में चूक की है, जिससे निर्दिष्ट राशि संचित हो गई है;
- (v) उक्त वित्तीय सहायता के पुनर्भुगतान में ऐसी चूक के परिणामस्वरूप उधारकर्ता का खाता गैर-निष्पादित परिसंपत्ति के रूप में वर्गीकृत किया गया है;
- (vi) यह अभिप्रमाणित किया जाता है कि धारा 13 की उप-धारा (2) के प्रावधानों के अनुसार अपेक्षित साठ दिनों की नोटिस अवधि, जिसमें चूक की गई वित्तीय सहायता के भुगतान की मांग की गई थी, उधारकर्ता को विधिवत् तामील करा दी गई है;
- (vii) उधारकर्ता से प्राप्त नोटिस के प्रत्युत्तर में की गई आपत्ति अथवा अभ्यावेदन पर सुरक्षित लेनदार द्वारा विचार किया गया है और ऐसी आपत्ति अथवा अभ्यावेदन को स्वीकार न किए जाने के कारण उधारकर्ता को संप्रेषित कर दिए गए हैं;
- (viii) उपरोक्त नोटिस के बावजूद उधारकर्ता ने वित्तीय सहायता के पुनर्भुगतान के लिए कोई भुगतान नहीं किया है और अतः अधिकृत अधिकारी धारा 13 की उप-धारा (4) के प्रावधानों को धारा 14 के साथ पढ़ते हुए, मूल अधिनियम के अंतर्गत, सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने का हकदार है;
- (ix) इस अधिनियम तथा इसके अधीन बनाए गए नियमों के प्रावधानों का अनुपालन कर लिया गया है;

इसके अलावा, अधिकृत अधिकारी से शपथपत्र प्राप्त होने पर, जिला दंडाधिकारी या मुख्य महानगर दंडाधिकारी, जैसा भी मामला हो, शपथपत्र की सामग्री से संतुष्ट होने के बाद 2[आवेदन की तिथि से तीस दिनों की अवधि के भीतर] सुरक्षित परिसंपत्तियों पर कब्जा लेने के उद्देश्य से उपयुक्त आदेश पारित करेगा।

3[यह भी परंतु उपबंधित है कि यदि तीस दिनों की उक्त अवधि के भीतर, अपने नियंत्रण से परे कारणों से, मुख्य महानगर दंडाधिकारी अथवा जिला दंडाधिकारी द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है, तो वह उसके लिए लिखित रूप में कारण अभिलिखित करने के पश्चात्, ऐसी अवधि को आगे बढ़ा सकता है; परंतु ऐसी आगे बढ़ाई गई अवधि समग्र रूप से साठ दिनों से अधिक नहीं होगी।]

यह भी परंतु उपबंधित है कि प्रथम उपबंध में वर्णित शपथपत्र दायर करने की आवश्यकता, इस अधिनियम के प्रारंभ की तिथि को, जैसा भी मामला हो, किसी जिला दंडाधिकारी अथवा मुख्य महानगर दंडाधिकारी के समक्ष लंबित कार्यवाही पर लागू नहीं होगी।

5[(1 ए) जिला दंडाधिकारी अथवा मुख्य महानगर दंडाधिकारी अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी को अधिकृत कर सकता है—

- (i) ऐसी परिसंपत्तियों तथा उनसे संबंधित दस्तावेजों का कब्जा लेने के लिए; तथा
- (ii) ऐसी परिसंपत्तियों तथा दस्तावेजों को सुरक्षित लेनदार को अग्रेषित करने के लिए।]

(2) उप-धारा (1) के प्रावधानों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के प्रयोजन से, मुख्य महानगर दंडाधिकारी अथवा जिला दंडाधिकारी ऐसे कदम उठा सकता है या उठवाया जा सकता है और ऐसे बल का प्रयोग कर सकता है या करवा सकता है, जैसा कि उसकी राय में आवश्यक हो।

(3) इस धारा के अनुसरण में मुख्य महानगर दंडाधिकारी या जिला दंडाधिकारी द्वारा किया गया कोई भी कार्य [या मुख्य महानगर दंडाधिकारी या जिला दंडाधिकारी द्वारा अधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा किया गया कोई भी कार्य] किसी भी न्यायालय में या किसी भी प्राधिकारी के समक्ष प्रश्नगत नहीं किया जाएगा।

अधिसूचना सं. एस.ओ. 171 (ई), दिनांक 15-1-2013 के माध्यम से)।

2. अधिनियम संख्या 44, 2016 द्वारा प्रतिस्थापित, धारा 12(i) (प्रभावी दिनांक 1-9-2016, अधिसूचना सं. एस.ओ. 2831(ई), दिनांक 1 सितम्बर, 2016 के माध्यम से)।

3. अधिनियम संख्या 44, 2016 द्वारा प्रविष्ट, धारा 12(ii) (प्रभावी दिनांक 1-9-2016, अधिसूचना सं. एस.ओ. 2831(ई), दिनांक 1 सितम्बर, 2016 के माध्यम से)।

4. भारत के राजपत्र (असाधारण), भाग II, खंड 1, संख्या 56, दिनांक 8 सितम्बर, 2016 में प्रकाशित संशोधन अधिसूचना द्वारा संशोधित।

5. अधिनियम संख्या 1, 2013 द्वारा प्रविष्ट, धारा 6(ख) (प्रभावी दिनांक 15-1-2013, अधिसूचना सं. एस.ओ. 171 (ई), दिनांक 15-1-2013 के माध्यम से)।

6. अधिनियम संख्या 1, 2013 द्वारा प्रविष्ट, धारा 6(ग) (प्रभावी दिनांक 15-1-2013, अधिसूचना सं. एस.ओ. 171 (ई), दिनांक 15-1-2013 के माध्यम से)।

उक्त संशोधित प्रावधान उस प्रासंगिक समय पर लागू नहीं थे जब केरल उच्च न्यायालय द्वारा **मुहम्मद अशरफ़** (उपरोक्त) में निर्णय दिया गया था, क्योंकि उस समय स्थिति कुछ भिन्न थी। उप-धारा (1-ए) उस समय प्रवर्तन में नहीं थी। यह 2013 में किए गए संशोधन के माध्यम से अस्तित्व में आई। उक्त प्रावधान को 2013 में संशोधित किया गया और आगे 2016 में पुनः संशोधित किया गया, जैसा कि ऊपर उद्धृत पाठ में पुनरुत्पादित किया गया है।

21. केरल उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने **मुहम्मद अशरफ़** (उपरोक्त) में, 2002 अधिनियम की धारा 14 के असंशोधित प्रावधान का उल्लेख करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि उक्त प्रावधान एक प्रक्रियात्मक उपाय है, जिसके अंतर्गत सी.एम.एम. अथवा डी.एम., जैसा भी मामला हो, सुरक्षित परिसंपत्तियों अथवा उनसे संबंधित दस्तावेजों का कब्जा लेने के लिए सुरक्षित लेनदार को सहायता प्रदान करने के लिए बाध्य है। उक्त प्राधिकारी को सुरक्षित परिसंपत्तियों तथा उनसे संबंधित दस्तावेजों का कब्जा लेने हेतु आवश्यक कदम उठाने और आवश्यकतानुसार बल प्रयोग करने की शक्ति प्रदान की गई है। उल्लेखनीय रूप से, उक्त प्राधिकारी का कृत्य संरक्षित है और 2002 अधिनियम की धारा 34 के आलोक में, उसे किसी भी न्यायालय अथवा किसी भी प्राधिकारी के समक्ष प्रश्नगत नहीं किया जा सकता।

यह भी अवलोकन किया गया कि इस धारा के अंतर्गत प्राधिकारी द्वारा किसी परीक्षण अथवा न्यायनिर्णयन की परिकल्पना नहीं की गई है। तथापि, की जाने वाली सीमित जाँच यह है कि क्या सुरक्षित संपत्ति की पहचान की जा सकती है और क्या धारा 13(2) के अंतर्गत साठ दिनों की नोटिस जारी की गई थी, जिससे सुरक्षित लेनदार को धारा 13(4) का सहारा लेने और सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने में सक्षम बनाया जा सके। न्यायालय ने यह भी अभिमत व्यक्त किया कि 2002 अधिनियम की धारा 14 का उद्देश्य केवल शक्ति के क्रियान्वयन तथा सुरक्षित लेनदार को सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने में सहायता प्रदान करना है। ऐसे कृत्य से प्रभावित उधारकर्ता अथवा व्यक्ति के पास इस न्यायालय द्वारा **मार्डिया केमिकल्स लि. एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य**<sup>37</sup> में निर्धारित अनुसार, रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत न्यायिक पुनरीक्षण का अधिकार है। खंडपीठ ने यह भी अवलोकन किया कि 2002 अधिनियम एक स्वयंपूर्ण संहिता है, जिसमें अधिकरण को यह घोषित करने की शक्तियाँ भी सम्मिलित हैं कि सुरक्षित लेनदार द्वारा अपनाए गए किसी भी उपाय को अवैध ठहराया जा सकता है तथा कब्जा लेने की परिणामी बहाली उन व्यक्तियों के पक्ष में की जा सकती है जिनसे ऐसा कब्जा लिया गया था। न्यायालय ने दोहराया कि धारा 14 में निर्दिष्ट प्राधिकरण में किसी भी प्रकार की न्यायिक शक्ति निहित न होने के कारण, उसे न्यायाधिकरण में निहित शक्तियों का प्रयोग करने का कोई अधिकार नहीं है। जबकि, यह केवल सुरक्षित लेनदार को सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने में, सुरक्षित लेनदार को ऐसे कब्जे का अधिकार प्राप्त होने से संबंधित मूल तथ्यों के सत्यापन के पश्चात्, सुविधा प्रदान कर सकता है। न्यायालय ने इस संदर्भ में इस न्यायालय के निर्णय **ट्रान्सकोर बनाम भारत संघ एवं अन्य**<sup>38</sup> की ओर ध्यान आकृष्ट किया, जिसमें 2002 अधिनियम के प्रावधानों का विश्लेषण किया गया था। तत्पश्चात्, न्यायालय ने गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णय **बैंक ऑफ इंडिया बनाम पंकज दिलीपभाई हेमनानी एवं अन्य**<sup>39</sup> का भी उल्लेख किया और उस प्रतिपादन से सहमति व्यक्त की कि धारा 14 के अंतर्गत संदर्भित प्राधिकारी केवल यह सत्यापित कर सकता है कि धारा 13(2) के अंतर्गत विहित साठ दिनों की नोटिस जारी की गई है या नहीं तथा क्या सुरक्षित परिसंपत्ति की पहचान संभव है। इसके बाद यह अवलोकन किया गया कि कार्रवाई में प्रवेश करने से पूर्व प्राधिकारी का यह दायित्व है कि वह उक्त

37(2004) 4 एससीसी 311 (कंडिका सं. 80 और 81)

38 (2008) 1 एस.सी.सी. 125 (कंडिका सं. 74)

39 ए.आई.आर. 2007 गुजरात 201

पहलुओं के संबंध में स्वयं को संतुष्ट करे। साथ ही, यह भी कि 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते समय वह किसी विवाद के न्यायनिर्णयन अथवा परीक्षण में प्रविष्ट नहीं कर सकता। उसी समय, संसद ने 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत किसी वरिष्ठ अधिकारी को शक्ति प्रदान की है, ताकि सुरक्षित लेनदार के आग्रह पर मनमाने अथवा कठोर कृत्यों से बचा जा सके। न्यायालय ने *सोलारिस सिस्टम्स प्रा. लि. एवं अन्य बनाम ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स एवं अन्य*<sup>40</sup> में इस न्यायालय के निर्णय का भी उल्लेख किया, जिसमें एकल न्यायाधीश द्वारा प्रथम बार यह प्रतिपादित किया गया था कि गैर-महानगरीय क्षेत्रों के लिए सी.जे.एम. 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत आवेदन से निपटने हेतु सक्षम है। न्यायालय ने यह भी अवलोकन किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(क), जिसमें महानगरीय क्षेत्र की परिभाषा दी गई है, तथा धारा 3, जो संरचना के संदर्भ में उस उपबंध को परिभाषित करती है जो संबंधित क्षेत्रों में अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग करते समय सी.जे.एम. को सी.एम.एम. के समकक्ष ठहराती है, को ध्यान में रखा जाना चाहिए। उक्त संदर्भ में विधायी योजना पर विचार करते हुए, न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि गैर-महानगरीय क्षेत्रों में सी.जे.एम. की शक्तियाँ तथा महानगरीय क्षेत्रों में सी.एम.एम. की शक्तियाँ एक और समान हैं, केवल यही अंतर है कि सी.एम.एम. महानगरीय क्षेत्रों में शक्तियों का प्रयोग करता है। न्यायालय ने इस न्यायालय के निर्णय *यूनिक ब्यूटाइल ट्यूब इंडस्ट्रीज प्रा. लि.* (उपरोक्त) का भी विश्लेषण किया और वर्तमान प्रकरण में यह प्रतिपादित करते हुए उसे भिन्न माना कि प्रश्न यह था कि क्या महानगरीय क्षेत्रों में प्रयुक्त शब्द सी.एम.एम. में गैर-महानगरीय क्षेत्रों में सी.जे.एम. सम्मिलित होगा। न्यायालय ने यह भी अवलोकन किया कि विधि को युक्तिसंगत ढंग से समझा जाना चाहिए। इसके लिए, इसने *होम्स बनाम ब्रैंडफील्ड रूरल डिस्ट्रिक्ट काउंसिल*<sup>41</sup> और *श्री नासिरुद्दीन* (उपरोक्त) में दिए गए कथन से समर्थन लिया, जिसमें इस न्यायालय ने प्रावधान की "उचित और विवेकपूर्ण" व्याख्या को अपनाया। तत्पश्चात् न्यायालय ने *सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स लि. बनाम ऐशर*<sup>42</sup> में डेनिंग, एल.जे. के उक्त कथन का उल्लेख किया, जिसे इस न्यायालय ने *एम. पेंतैया बनाम मुद्दला वीरमल्लप्पा*<sup>43</sup> में अनुमोदन सहित उद्धृत किया था; *बैंगलोर वाटर सप्लाई एंड सीवरेज*

40 आई.एल.आर. 2006 केरल 645

41 1949 (1) ऑल इंग्लैंड लॉ रिपोर्ट्स 381 (पृष्ठ 384)

42 (1949) 2 ऑल इंग्लैंड लॉ रिपोर्ट्स 155, पृष्ठ 164 (सी.ए.)

43 (1961) 2 एस.सी.आर. 295

*बोर्ड बनाम ए. राजप्पा एवं अन्य*<sup>44</sup> तथा *एनईपीसी मिकॉन लि. बनाम मैग्ना लीजिंग लि.*<sup>45</sup> में भी इसका उल्लेख किया गया। तत्पश्चात् न्यायालय ने *इन्को यूरोप लि. एवं अन्य बनाम फर्स्ट चॉइस डिस्ट्रीब्यूशन (ए फर्म) एवं अन्य*<sup>46</sup> में हाउस ऑफ लॉर्ड्स द्वारा किए गए उद्धोष का संदर्भ दिया, जहाँ यह अवलोकन किया गया कि उपयुक्त मामलों में न्यायालय अपनी व्याख्यात्मक प्रक्रिया में विधायिका के उद्देश्य को प्रभाव देने हेतु शब्दों का प्रयोग कर सकता है। इसके बाद न्यायालय ने *पद्मसुंदरा राव एवं अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य*<sup>47</sup> में इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख किया, जहाँ संविधान पीठ ने यह माना था कि “छूटा हुआ मामला” को न्यायालय द्वारा केवल स्पष्ट अनिवार्यता की स्थिति में ही पूरा किया जा सकता है और तब भी जब उसका कारण विधि के चारों कोनों के भीतर से प्राप्त हो। इसके पश्चात् न्यायालय ने *नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम लक्ष्मी नारायण धुत*<sup>48</sup> के निर्णय का उल्लेख किया, जिसमें रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम पीयरलेस जनरल फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी लि. एवं एक अन्य<sup>49</sup> में प्रतिपादित सिद्धांत पर विचार किया गया था; तथा *कहर सिंह एवं अन्य बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन)*<sup>50</sup> का भी उल्लेख किया, जिसमें यह धारण किया गया था कि यदि किसी वैधानिक उपबंध के एक से अधिक अर्थ संभव हों, तो न्यायालय को वही अर्थ अपनाना चाहिए जो विधायी आशय का प्रतिनिधित्व करता हो। तथापि, न्यायालय का कार्य केवल विधि की व्याख्या करना है, न कि विधि-निर्माण करना। साथ ही, व्याख्या की प्रक्रिया में शाब्दिक तथा उद्देश्यपरक—दोनों दृष्टिकोणों का समन्वय किया जाता है। अंततः, न्यायालय ने यह अवलोकन किया कि वर्तमान मामले में कोई छूटा हुआ मामला नहीं है। उसमें यह कहा गया है कि महानगरीय क्षेत्रों में सी.जे.एम. को सी.एम.एम. के रूप में अभिहित किया जाता है और इसके विपरीत, *आवश्यक परिवर्तनों सहित* निहितार्थ एवं संदर्भ के आधार पर, दोनों अपने-अपने क्षेत्राधिकार के अनुसार समान स्तर पर स्थित प्राधिकारी को निरूपित करते हैं। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि गैर-महानगरीय क्षेत्रों में, जिला दंडाधिकारी के अतिरिक्त, सी.जे.एम. भी सुरक्षित आस्तियों

44 (1978) आई.एल.एल.जे. 349 एस.सी.

45 1999 क्रिमिनल लॉ जर्नल 2883

46 2000 (2) ऑल इंग्लैंड लॉ रिपोर्ट्स 109

47 (2002) 255 आई.टी.आर. 147 (एस.सी.)

48 2007 (2) के.एल.टी. 470 (एस.सी.) (कंडिका संख्या 34 और 35)

49 (1996) 1 एस.सी.सी. 642

50 (1988) 3 एस.सी.सी. 609

का कब्जा दिलाने में सुरक्षित लेनदार को सहायता प्रदान करने हेतु शक्तियों का प्रयोग कर सकता है; और ऐसा करते समय दंडाधिकारी सुरक्षित आस्तियों की पहचान तथा उनका कब्जा लेने के लिए एक आयुक्त की नियुक्ति कर सकता है तथा यदि कोई प्रतिरोध हो, तो पुलिस सहायता मांग सकता है और सुरक्षित आस्तियों का कब्जा प्राप्त करने हेतु आवश्यक प्रभावी कदम उठा सकता है।

22. तेलंगाना राज्य तथा आंध्र प्रदेश राज्य के लिए हैदराबाद स्थित न्यायिक उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने *मेसर्स टी.आर. ज्वेलरी* (उपरोक्त) में 2002 अधिनियम के प्रावधानों का भी विश्लेषण किया और यह अवलोकन किया कि उक्त अधिनियम का उद्देश्य गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (एन.पी.ए.) के रूप में घोषित देयों की शीघ्र वसूली सुनिश्चित करना है, जिसमें अधिकरणों अथवा न्यायालयों के हस्तक्षेप के बिना, ऐसी देयों की वसूली हेतु की गई कार्रवाई से उत्पन्न विवादों का त्वरित समाधान किया जा सके, ताकि पूंजी तरलता और संसाधनों की बेहतर उपलब्धता सुनिश्चित हो और इससे अर्थव्यवस्था की वृद्धि तथा जनकल्याण में सहायता मिले। 2002 अधिनियम की धारा 14 के संदर्भ में यह अवलोकन किया गया कि इसका अंतर्निहित उद्देश्य निर्दिष्ट प्राधिकारी से अनुरोध करके सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने अथवा उन पर नियंत्रण प्राप्त करने में सुरक्षित लेनदार की सहायता करना है। तत्पश्चात् न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की योजना का विश्लेषण किया और यह नोट किया कि कार्यपालक शक्तियों का प्रयोग कार्यपालक दंडाधिकारी द्वारा किया जाना है, जबकि साक्ष्य का अभिलेखन न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा ही किया जा सकता है। आगे, दंड प्रक्रिया संहिता की योजना से यह स्पष्ट है कि सी.जे.एम., सी.एम.एम. तथा डी.एम. का संहिता में पृथक-पृथक उल्लेख किया गया है तथा राज्य सरकार को सी.जे.एम. और सी.एम.एम. की नियुक्ति करने की शक्ति प्रदान की गई है, जबकि प्रत्येक जिले में राज्य सरकार द्वारा किसी एक कार्यपालक दंडाधिकारी को डी.एम. के रूप में नियुक्त किया जाता है। इसके बाद न्यायालय ने विभिन्न उच्च न्यायालयों के उन निर्णयों का उल्लेख किया, जिनमें 2002 अधिनियम की धारा 14 के संदर्भ में इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि क्या गैर-महानगरीय क्षेत्रों में सी.जे.एम. सुरक्षित लेनदार द्वारा प्रस्तुत आवेदन को स्वीकार करने अथवा उस पर विचार करने के लिए समान रूप से सक्षम है। तत्पश्चात् न्यायालय ने 2002 अधिनियम की धाराओं 35 तथा 37 का उल्लेख किया और इस न्यायालय के निर्णय *मैथ्यू वर्गीज़ बनाम एम. अमृत कुमार एवं अन्य*<sup>1</sup> का संदर्भ देते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का अनुप्रयोग 2002 अधिनियम के प्रावधानों के अतिरिक्त होगा,

न कि उनके *अपवर्जन* में, और दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों को 2002 अधिनियम के अंतर्गत मामलों से बाहर नहीं किया जा सकता। इस निष्कर्ष से असहमत होते हुए, मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने यह धारण किया कि 2002 अधिनियम की धारा 35 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों पर अधिभावी होगी। अन्य निर्णयों का विश्लेषण करने के पश्चात्, उसने यह मत व्यक्त किया कि 2002 अधिनियम की धारा 14 के संदर्भ में, मुख्य न्यायिक न्यायाधीश (सी जे एम) शपथपत्र में किए गए कथन की सत्यता की जांच करने के बाद अपने अधीनस्थ किसी भी अधिकारी को ऐसी संपत्तियों पर कब्जा करने के लिए अधिकृत कर सकता है। अतः, यह केवल एक प्रक्रियात्मक कदम है, जिसमें किसी प्रकार का विवाद-न्यायनिर्णयन नहीं है। इसलिए, जब सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने के लिए आदेश पारित किया जाता है, तो वह एक प्रशासनिक आदेश मात्र होता है, बशर्ते कि अन्य सभी शर्तें पूर्ण हों। यह उल्लेख करते हुए कि 2002 अधिनियम की धारा 14 के संदर्भ में सी.एम.एम. और डी.एम. द्वारा प्रयुक्त शक्तियाँ परस्पर समानार्थी हैं और उनका स्वरूप न्यायनिर्णयात्मक नहीं है, न्यायालय ने विचाराधीन प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप से दिया। तत्पश्चात् न्यायालय ने यह भी नोट किया कि प्रावधान में कोई *छूटा हुआ मामला* नहीं है, न ही वह ऐसा कुछ पढ़ रहा है जिसका विधायिका ने कभी अभिप्राय नहीं रखा हो, और न ही प्रावधान की ऐसी व्याख्या करने का प्रयास कर रहा है जिससे विधायी आशय विफल हो। इसके विपरीत, न्यायालय उद्देश्यपरक व्याख्या का सहारा ले रहा था ताकि उस विधायी आशय को प्रभावी किया जा सके, जिसके लिए यह अधिनियम बनाया गया था। अतः यह निष्कर्ष निकाला गया कि गैर-महानगरीय क्षेत्रों में सी.जे.एम. द्वारा शक्ति का प्रयोग, जो महानगरीय क्षेत्रों में सी.एम.एम. के समान शक्तियों का प्रयोग करता है, 2002 अधिनियम की धारा 14 में निहित व्यवस्था को किसी भी प्रकार से न तो भंग करेगा और न ही उसके प्रतिकूल होगा। इसके अतिरिक्त, इससे किसी भी पक्षकार को रती भर भी पूर्वाग्रह नहीं पहुँचेगा। बल्कि, यह न्यायिक विवेक (सी.जे.एम.) की अधिसत्ता में एक न्यायसंगत प्रक्रिया सुनिश्चित करेगा, जिसके अंतर्गत सुरक्षित लेनदार को अपनी परिसंपत्तियों की वसूली में सहायता प्रदान की जाएगी और इस प्रकार उस उद्देश्य की प्राप्ति होगी, जिसके लिए 2002 अधिनियम अधिनियमित किया गया था।

23. इसी प्रकार, बेंगलोर स्थित कर्नाटक उच्च न्यायालय ने *कावेरी मार्केटिंग* (उपरोक्त) में यह अभिमत व्यक्त किया कि "सी.एम.एम." अभिव्यक्ति की व्याख्या गैर-महानगरीय क्षेत्रों में सी.जे.एम. को सम्मिलित मानते हुए की जानी चाहिए, क्योंकि सी.एम.एम. और

सी.जे.एम. की शक्तियाँ समान हैं। इस प्रकार, कर्नाटक उच्च न्यायालय ने यह भी अभिमत व्यक्त किया कि गैर-महानगरीय क्षेत्रों में सी.जे.एम. 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत आवेदन को ग्रहण करने और उससे निपटने के लिए सक्षम होगा।

24. इसी प्रकार का दृष्टिकोण इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने **अभिषेक मिश्रा** (उपरोक्त) में अपनाया है। यह धारण किया गया कि 2002 अधिनियम की धारा 14 एक प्रक्रियात्मक उपाय है, जो सुरक्षित लेनदार को उसमें निर्दिष्ट प्राधिकारी के समक्ष आवेदन प्रस्तुत कर सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने में सक्षम बनाती है। यहाँ तक कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने भी दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों की योजना की ओर ध्यान आकृष्ट किया, जिसके अंतर्गत संबंधित प्राधिकारी में कार्यपालक शक्तियों का निहित होना दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त, उसने केरल उच्च न्यायालय द्वारा **मुहम्मद अशरफ़** (उपरोक्त) में नोट किए गए समान निर्णयों का भी संदर्भ लिया और निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला:—

“34. उपरोक्त सुस्थापित विधि की व्याख्या के सिद्धांतों को लागू करते हुए, इस मुद्दे का उत्तर यह है कि विधायिका द्वारा प्रयुक्त नामकरण ‘मुख्य महानगरीय दंडाधिकारी’ अधिनियम की धारा 14 में गैर-महानगरीय क्षेत्र में कार्यरत मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी को शामिल किया गया है और उसे एस.ए.आर.एफ.ए.इ.एस.आई अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत किए गए आवेदन पर विचार करने का अधिकार होगा। हमारे सुविचारित मत में, यहाँ कोई छूटा हुआ मामला नहीं है। हमारे द्वारा की गई व्याख्या न तो प्रावधान में ऐसा कुछ जोड़ती है जिसका विधायिका ने कभी अभिप्राय नहीं रखा था, और न ही हमारे द्वारा दी गई व्याख्या किसी भी प्रकार से विधायिका के आशय को निष्फल करती है। यह एक उद्देश्यपरक व्याख्या है, जिसका उद्देश्य अधिनियम को अधिनियमित करने के वास्तविक विधायी आशय को आगे बढ़ाना है, अर्थात् बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों की उन देयताओं की शीघ्र वसूली, जिन्हें एन.पी.ए. के रूप में घोषित किया गया है। इसके विपरीत, यदि “मुख्य महानगर दंडाधिकारी” शब्द की व्याख्या में शाब्दिक व्याख्या के सिद्धांत अपनाए जाएँ, तो इससे न केवल विधायिका के उद्देश्य और प्रयोजन की विफलता होगी, बल्कि ऐसा परिणाम उत्पन्न होगा जो स्पष्टतः असंगत होगा और जिसकी विधायिका द्वारा कल्पना नहीं की गई होगी। लॉर्ड रीड के अनुसार, ल्यूक बनाम आई.आर.सी., 1966 ए.सी. 557 में, जहाँ शब्दों को उनके शाब्दिक अर्थ में अपनाने से विधायिका के स्पष्ट आशय की विफलता होती हो और पूर्णतः अविवेकपूर्ण परिणाम उत्पन्न होता हो, वहाँ हमें शब्दों के साथ कुछ हद

तक 'हिंसा' करनी पड़ती है ताकि उस स्पष्ट आशय को प्राप्त किया जा सके और एक युक्तिसंगत व्याख्या की जा सके।

35. आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा टी.आर. ज्वेलरी एवं अन्य बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य (उपरोक्त) में तथा केरल उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा मुहम्मद अशरफ़, सी. अरिफ़ बनाम भारत संघ में व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से हमें समर्थन प्राप्त होता है। हम बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा इंडसइंड बैंक लि. बनाम महाराष्ट्र राज्य में तथा मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा के. अरोक्कियाराज बनाम मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, श्रीविल्लिपुथुर एवं अन्य, एम.ए.एन.यू./टी.एन./1796/2013 : 2013 (4) एल.डब्ल्यू. 485 में अपनाए गए विपरीत दृष्टिकोण से सहमत होने में असमर्थ हैं। मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने के. अरोक्कियाराज (उपरोक्त) में यह भी अभिमत व्यक्त किया कि 2002 अधिनियम की धारा 14 में प्रयुक्त शब्दावली को उसका वास्तविक अर्थ दिया जाना चाहिए, बिना दंड प्रक्रिया संहिता से कोई सहायता लिए, धारा 35, 2002 अधिनियम के आलोक में, जो यह उपबंधित करती है कि अधिनियम के प्रावधान सभी अन्य विधियों पर अधिभावी होंगे, जिनमें दंड प्रक्रिया संहिता भी सम्मिलित है। यह भी माना गया कि जब एस.ए.आर.एफ.ए.ई.एस.आई. अधिनियम एक स्वयंपूर्ण संहिता है, तब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 3 का सहारा लेने की कोई आवश्यकता नहीं है।

36. आदरणीय न्यायाधीशों के प्रति सम्मान रखते हुए, हम उक्त दृष्टिकोण से सहमत होने के लिए स्वयं को आश्वस्त नहीं कर पाए। पूर्ण पीठ ने 2002 अधिनियम की धारा 37 का संज्ञान नहीं लिया, जो यह उपबंधित करती है कि अन्य विधियों का अनुप्रयोग निषिद्ध नहीं है। उक्त धारा इस प्रकार है:—

“37. अन्य विधियों का अनुप्रयोग वर्जित नहीं— इस अधिनियम अथवा इसके अधीन बनाए गए नियम, कंपनी अधिनियम, 1956 (1 सन् 1956), प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1956 (42 सन् 1956), भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड अधिनियम, 1992 (15 सन् 1992), बैंकों एवं वित्तीय संस्थानों को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 (51 सन् 1993) अथवा उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अपवर्जन में।”

37. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि धारा 37 में प्रयुक्त शब्द “उस समय प्रवृत्त कोई अन्य विधि” के अंतर्गत दंड प्रक्रिया संहिता भी सम्मिलित होगी और दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का अनुप्रयोग विचार से बाहर नहीं किया जा सकता। अतः, मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा अपनाया गया यह दृष्टिकोण कि 2002 अधिनियम की धारा 35 के आलोक में, 2002 अधिनियम के प्रावधान दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों पर अधिभावी होंगे, तथा यह कि धारा 14 में प्रयुक्त “मुख्य महानगर दंडाधिकारी” शब्दों को दंड प्रक्रिया संहिता की किसी सहायता के बिना उसका शाब्दिक अर्थ दिया जाना चाहिए—हमें सही प्रतीत नहीं होता।

38. उपरोक्त तथ्यों और विचार-विमर्श के आधार पर, हम इस सुविचारित मत पर हैं कि 2002 अधिनियम की धारा 14 में प्रयुक्त “मुख्य महानगर दंडाधिकारी” नामावली, गैर-महानगरीय क्षेत्र में कार्यरत “मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी” को भी सम्मिलित करती है और उसे 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत सुरक्षित लेनदार द्वारा किए गए आवेदन को ग्रहण करने का अधिकार-क्षेत्र प्राप्त होगा।

25. अब हम इस दृष्टिकोण से अन्य निर्णयों की ओर रुख करेंगे कि 2002 के अधिनियम की धारा 14 के तहत सुरक्षित लेनदार द्वारा दायर आवेदन से निपटने के लिए केवल गैर-महानगरीय क्षेत्र में डीएम सक्षम है। *इंडसइंड बैंक लिमिटेड* (उपरोक्त) में बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने 2002 के अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के विवरण को स्वीकार करने के बाद कहा कि सुरक्षित लेनदार को सुरक्षित धन के संबंध में वसूली को लागू करने के उद्देश्य से कदम उठाने का हकदार होने से अब हम उन अन्य निर्णयों पर विचार करेंगे जिनमें यह माना गया है कि गैर-महानगरीय क्षेत्र में केवल डीएम ही 2002 अधिनियम की धारा 14 के तहत सुरक्षित लेनदार द्वारा दायर आवेदन पर विचार करने के लिए सक्षम है। बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने *इंडसइंड बैंक लिमिटेड* (उपरोक्त) मामले में 2002 अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के विवरण पर विचार करने के बाद यह राय व्यक्त की कि सुरक्षित लेनदार को सुरक्षित परिसंपत्तियों के संबंध में वसूली लागू करने के उद्देश्य से कदम उठाने से पहले किसी सक्षम न्यायालय/डीआरटी से डिक्री प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। जब इस विशिष्ट प्रश्न पर विचार किया गया कि क्या 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत सुरक्षित लेनदार द्वारा दायर आवेदन से निपटने के लिए सी.जे.एम. सक्षम है, तो न्यायालय ने 2002 अधिनियम की धारा 14 के साधारण पाठ के आधार पर यह धारण किया कि सी.जे.एम. ऐसा करने के लिए सक्षम नहीं है; और यह कि महानगरीय क्षेत्रों में केवल

सी.एम.एम. तथा गैर-महानगरीय क्षेत्रों में डी.एम. ही 2002 अधिनियम के अंतर्गत सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने में सुरक्षित लेनदार की सहायता करने के लिए सक्षम हैं। यह नोट किया गया कि 2002 अधिनियम की धारा 14 में सी.जे.एम. का उल्लेख स्पष्टतः अनुपस्थित है और इसलिए विधायिका ने गैर-महानगरीय क्षेत्र में सी.जे.एम. को उक्त वैधानिक कार्य सौंपने का आशय नहीं रखा, जबकि महानगरीय क्षेत्रों में वही कार्य सी.एम.एम., जो एक न्यायिक अधिकारी है, को सौंपा गया है। पुनः, *अर्जुन अर्बन को-ऑपरेटिव बैंक लि.* (उपरोक्त) में, बॉम्बे उच्च न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने *इंडसइंड बैंक लि.* (उपरोक्त) में की गई विवेचना को दोहराया, *ट्रेड वेल एवं एक अन्य बनाम इंडियन बैंक एवं एक अन्य*<sup>52</sup>, *ट्रान्सकोर* (उपरोक्त) तथा *यूनिक ब्यूटाइल ट्यूब इंडस्ट्रीज प्रा. लि.* (उपरोक्त) में प्रतिपादित सिद्धांतों का उल्लेख करने के पश्चात्। केरल उच्च न्यायालय ने *मुहम्मद अशरफ़* (उपरोक्त) में यह नोट किया और उससे इस सीमा तक सहमति व्यक्त की कि धारा 14 में कोई छूटा हुआ मामला नहीं है—क्योंकि वह दो भिन्न प्राधिकारों का संदर्भ देती है। तथापि, उसने इस दृष्टिकोण से असहमति व्यक्त की कि सी.जे.एम. भी ऐसे आवेदनों से निपटने के लिए सक्षम है; क्योंकि उसके मत में, जब 2002 अधिनियम की धारा 14 का शाब्दिक अर्थ ग्रहण किया जाता है, तो उसमें कुछ भी जोड़ने या प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता नहीं है। धारा 14 की यथास्थिति व्याख्या किसी भी प्रकार का असंगत परिणाम उत्पन्न नहीं करती। यह भी नोट किया गया कि धारा 14 में संदर्भित प्राधिकारी को पक्षकारों के किसी भी अधिकार का न्यायनिर्णयन करने की शक्ति नहीं है और वह केवल कब्जा वसूली में सुरक्षित लेनदार को सहायता प्रदान कर सकता है। यह अभिमत व्यक्त किया गया कि 2002 अधिनियम की धारा 14 में सी.जे.एम. शब्दों को जोड़ने से विधायिका को कोई बाधा नहीं थी। तत्पश्चात् न्यायालय ने डेनिंग, लॉर्ड के कथन का संदर्भ *सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स लि.* (उपरोक्त) में तथा हाउस ऑफ लॉर्ड्स के निर्णय *इन्को यूरोप लि.* (उपरोक्त) में दिया, जिसमें यह माना गया कि उपयुक्त मामलों में न्यायालय अपनी व्याख्यात्मक प्रक्रिया में विधायिका के उद्देश्य को प्रभाव देने हेतु शब्द जोड़ सकता है, यदि मसौदे में कोई चूक या अनजाने में कमी रह गई हो; किंतु अन्यथा नहीं। यह माना गया कि 2002 अधिनियम की धारा 14 का मसौदा तैयार करते समय कोई चूक नहीं थी, जब उसमें दो पृथक प्राधिकार—अर्थात् सी.एम.एम. और डी.एम.—का उल्लेख किया गया। अतः बॉम्बे उच्च न्यायालय ने प्रावधान की यथास्थिति शाब्दिक व्याख्या का मार्ग अपनाया।

52 (2007) क्रिमिनल लॉ जर्नल 2544

26. अगला निर्णय उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल का है, *दीपक अग्रवाल* (उपरोक्त) में, जिसमें बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा *इंडसइंड बैंक लि.* (उपरोक्त) में अपनाए गए दृष्टिकोण को स्वीकार किया गया और यह निष्कर्ष निकाला गया कि महानगरीय क्षेत्रों में केवल सी.एम.एम. तथा गैर-महानगरीय क्षेत्रों में डी.एम. ही 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने के लिए सुरक्षित लेनदार द्वारा दायर आवेदन से निपटने के लिए सक्षम होंगे।

27. कलकत्ता उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने *दिनेश कुमार अग्रवाल* (उपरोक्त) में, विचाराधीन प्रश्न से निपटते हुए, *रोनित निर्माण प्रा. लि. बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य*<sup>53</sup> में दिए गए पूर्व निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें उन्होंने *इंडसइंड बैंक लि.* (उपरोक्त) में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत से सहमति व्यक्त की थी। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि जब किसी प्राधिकारी को केवल सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से नामित किया गया है, तो वह किसी अन्य ऐसे प्राधिकारी को अधिकार-क्षेत्र प्रदान नहीं कर सकता, जिसका नाम ऐसी शक्तियों के प्रयोग हेतु वैधानिक प्रावधान में नहीं है। ऐसा करना विधायी कार्य का अतिक्रमण होगा। इस प्रकार, उसने केरल उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए उस विपरीत दृष्टिकोण से असहमति व्यक्त की, जिसमें यह कहा गया था कि सी.जे.एम. भी 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत सुरक्षित लेनदार द्वारा दायर आवेदन पर विचार करने के लिए समान रूप से सक्षम है। इस निर्णय के विरुद्ध दायर अपील पर कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने *आंध्रा बैंक* (उपरोक्त) में विचार किया और एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को बरकरार रखा कि महानगरीय क्षेत्रों में केवल सी.एम.एम. तथा गैर-महानगरीय क्षेत्रों में डी.एम. ही 2002 अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत सुरक्षित लेनदार द्वारा दायर आवेदन से निपटने के लिए सक्षम हैं। खंडपीठ ने केरल उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से इस आधार पर असहमति व्यक्त की कि 2002 अधिनियम की धारा 14 की भाषा निर्विवाद है और उसमें ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है कि गैर-महानगरीय क्षेत्रों में सी.जे.एम. को सक्षम बनाने हेतु व्याख्यात्मक निर्माण किया जाए।

28. मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने *के. अरोक्कियाराज* (उपरोक्त) में, *मार्डिया केमिकल्स लि.* (उपरोक्त) तथा *के. आर. चंद्रशेखरन बनाम भारत संघ*<sup>54</sup> में की गई विवेचना

53 ए.एस.टी. संख्या 1337 of 2011 (दिनांक 18 अक्टूबर, 2011)

54 2012 (2) सी.डब्ल्यू.सी. 115

का उल्लेख किया, जिसमें विचाराधीन प्रश्न के उद्देश्यों पर विचार किया गया था। यह नोट करते हुए कि 2002 अधिनियम एक स्वयंपूर्ण संहिता है, तथा प्रासंगिक प्रावधानों की ओर संकेत करने के पश्चात्, अपने निर्णय के कंडिका 15 और 16 में निम्नानुसार अवलोकन किया गया:—

"15. धारा 13(2), 13(4), 14(1) और 14(2) के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यदि उधारकर्ता सुरक्षित ऋणों या उनकी किसी किस्त के पुनर्भुगतान में चूक करता है, तो सुरक्षित लेनदार सुरक्षित संपत्तियों के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है। अधिनियम की धारा 13(4) के तहत पारित आदेश से व्यथित किसी भी व्यक्ति को अधिनियम की धारा 17 के तहत अपील का अधिकार दिया गया है। पक्षों के अधिकारों का निर्णय तभी होगा जब सुरक्षित लेनदार की कार्रवाई को धारा 17 के तहत दायर अपील में चुनौती दी जाएगी। अधिनियम की धारा 18 के तहत अपीलीय न्यायाधिकरण (डीआरएटी) में आगे अपील करने का भी प्रावधान है।

16. 2002 अधिनियम की धारा 14, जिसे संशोधन अधिनियम संख्या 1 सन् 2013 द्वारा जोड़ा गया, यह परिकल्पना करती है कि जिला दंडाधिकारी अथवा मुख्य महानगर दंडाधिकारी द्वारा किसी अधीनस्थ अधिकारी को सहायता प्रदान करने के लिए शक्ति का प्रत्यायोजन किया जा सकता है, जिससे संसद का यह आशय और अधिक स्पष्ट होता है कि सहायता प्रदान करने की शक्ति को एक कार्यपालक कार्य के रूप में माना जाए, न कि एक न्यायिक कार्य के रूप में। यदि यह शक्ति न्यायिक प्रकृति की होती, अर्थात् न्याय निर्णयात्मक होती, तो किसी भी अधीनस्थ अधिकारी को ऐसा कोई प्रत्यायोजन संभव नहीं होता। विधि में यह सुव्यवस्थित है कि न्यायनिर्णयात्मक प्राधिकारी अपनी शक्ति का प्रत्यायोजन नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करना "प्रतिनिधित्वित शक्तियों को आगे किसी और को नहीं सौंपा जा सकता" के सिद्धांत के प्रतिकूल होगा।"

तत्पश्चात् 2002 अधिनियम की परिभाषात्मक उपबंध की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया और यह नोट किया गया कि उप-धारा 2(2), जैसा कि भारतीय संविदा अधिनियम, 1872; संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882; कंपनी अधिनियम, 1956; भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992 में निहित है, 2002 अधिनियम में दी गई परिभाषा के साथ असंगत नहीं है। यह भी नोट किया गया कि धारा 14 में उल्लिखित प्राधिकारी से विवादग्रस्त

पक्षकारों के अधिकारों के न्यायनिर्णयन की अपेक्षा नहीं की गई है। तत्पश्चात् 2002 अधिनियम की धाराओं 34 तथा 35 का उल्लेख किया गया और निम्नानुसार अवलोकन किया गया:—

“20. उपरोक्त धारा 35 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि 2002 अधिनियम के प्रावधान, किसी अन्य उस समय प्रवृत्त विधि में निहित किसी भी असंगत बात के बावजूद प्रभावी होंगे। अतः एस.ए.आर.एफ.ए.ई.एस.आई. अधिनियम अन्य विधियों, जिनमें दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान भी सम्मिलित हैं, पर अधिभावी होगा। अधिनियम की धारा 36 परिसीमा से संबंधित है। परिसीमा का प्रश्न धारा 13(4) के अंतर्गत आदेश पारित करते समय उठाया जा सकता है, यदि वित्तीय परिसंपत्ति के संबंध में दावा परिसीमा अधिनियम में विहित अवधि के भीतर नहीं किया गया हो। अतः, परिसीमा अधिनियम, 1963 की प्रासंगिकता धारा 36 के अंतर्गत अनुमत है; तथापि, धारा 35 के अनुसार, दंड प्रक्रिया संहिता का अनुप्रयोग अनुमत नहीं है।”

इस पृष्ठभूमि में, पूर्ण पीठ ने उसी उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा *इंडियन ओवरसीज़ बैंक बनाम श्री अरविंद स्टील्स लि<sup>55</sup>* में दिए गए निर्णय का परीक्षण किया, जिसमें दं.प्र.सं. की धाराओं 3, 5 तथा 8 पर भरोसा किया गया था, जो सी.जे.एम., सी.एम.एम. तथा अतिरिक्त मुख्य महानगर दंडाधिकारी के अधिकार-क्षेत्र से संबंधित हैं। तत्पश्चात् उसने दं.प्र.सं. की धारा 20 का उल्लेख किया, जो कार्यपालक दंडाधिकारियों तथा उनके स्थानीय अधिकार-क्षेत्र से संबंधित है, जैसा कि उसमें विनिर्दिष्ट है। इन प्रावधानों का विश्लेषण करने के बाद, उसने निम्नानुसार अवलोकन किया:—

“25. उपरोक्त संदर्भित दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि मुख्य महानगर दंडाधिकारी, मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी तथा जिला दंडाधिकारी का पृथक-पृथक रूप से उल्लेख किया गया है और केवल सुविधा के प्रयोजन से, उच्च न्यायालय को महानगरीय क्षेत्रों में मुख्य महानगर दंडाधिकारी के समकक्ष कार्य करने हेतु मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी की नियुक्ति करने की शक्ति प्रदान की गई है, जिसमें न्यायिक तथा प्रशासनिक—दोनों प्रकार के कार्य सम्मिलित हैं। जब दं.प्र.सं. स्वयं जिला दंडाधिकारियों तथा उनके अधिकार-क्षेत्र से संबंधित है, तब धारा 14(1) में प्रयुक्त शब्दावली को दंड प्रक्रिया संहिता की किसी सहायता के बिना उसका वास्तविक अर्थ

दिया जाना चाहिए, विशेषकर 2002 अधिनियम की धारा 35 को धारा 2(2) के साथ पढ़ते हुए।

26. अधिनियम की धारा 14 अत्यंत स्पष्ट और निर्विवाद है। इसमें कहा गया है कि मुख्य महानगर दंडाधिकारी अथवा जिला दंडाधिकारी सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने में सुरक्षित लेनदारों की सहायता कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि महानगरीय क्षेत्रों में सुरक्षित लेनदार मुख्य महानगर दंडाधिकारी या जिला दंडाधिकारी—किसी एक—के समक्ष जा सकते हैं; और गैर-महानगरीय क्षेत्रों में, जहाँ मुख्य महानगर दंडाधिकारी नहीं है, सुरक्षित लेनदार केवल जिला दंडाधिकारी की सहायता ले सकते हैं, क्योंकि गैर-महानगरीय क्षेत्रों में सुरक्षित लेनदारों को सहायता प्रदान करने की शक्ति मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी में निहित नहीं है। उक्त धारा में कोई चूक नहीं है, जैसा कि प्रतिवादियों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रतिपादित किया गया है। यदि गैर-महानगरीय क्षेत्रों में सुरक्षित लेनदारों की सहायता हेतु कोई प्राधिकारी उल्लिखित नहीं है, तो सुरक्षित लेनदार यह तर्क देने में उचित होंगे कि दं.प्र.सं. में दिए गए अर्थ को एस.ए.आर.एफ.ए.ई.एस.आई. अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए अपनाया जा सकता है। उक्त स्थिति न होने के कारण, प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ वकील का यह तर्क देना उचित नहीं है कि जहाँ भी मुख्य महानगर दंडाधिकारी नहीं है, वहाँ मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी को स्वतः ही सुरक्षित लेनदारों की सहायता करने की शक्तियाँ प्राप्त हो जाएँगी। यदि इस प्रकार की व्याख्या स्वीकार कर ली जाए, तो धारा 14 में प्रयुक्त वाक्यांश "मुख्य महानगर दंडाधिकारी या जिला दंडाधिकारी" का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा।"

29. उपरोक्त दृष्टिकोण को सुदृढ़ करने के लिए, पूर्ण पीठ ने बॉम्बे उच्च न्यायालय के निर्णयों—*इंडसइंड बैंक लि.* (उपरोक्त) तथा *अर्जुन अर्बन को-ऑपरेटिव बैंक लि.* (उपरोक्त)—से सहमति व्यक्त की। उसने कलकत्ता उच्च न्यायालय के उस निर्णय पर भी भरोसा किया, जिसमें पूर्ण पीठ के समक्ष प्रस्तुत किए गए समान दृष्टिकोण अपनाए गए थे। तत्पश्चात् पूर्ण पीठ ने इस न्यायालय के निर्णयों—*ऑफिशियल लिक्विडेटर, उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड बनाम इलाहाबाद बैंक एवं अन्य<sup>6</sup>*, *श्री नसीरुद्दीन* (उपरोक्त), *भूदन सिंह एवं एक अन्य* (उपरोक्त), *के.पी. वर्गीज* (उपरोक्त), *आत्मा राम मित्तल* (उपरोक्त), *इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस*

(एस.सी.एस.) एसोसिएशन, यू.पी. एवं अन्य बनाम भारत संघ<sup>57</sup>, नसीरुद्दीन एवं अन्य बनाम सीता राम अग्रवाल<sup>58</sup>, गुजरात उच्च न्यायालय एवं एक अन्य बनाम गुजरात किशन मजदूर पंचायत एवं अन्य<sup>59</sup>, प्रकाश कुमार उर्फ प्रकाश भुट्टो बनाम गुजरात राज्य<sup>60</sup> तथा न्यू इंडिया एशयोरेंस कंपनी लि. बनाम नुसली नेविल वाडिया एवं एक अन्य<sup>61</sup>—का भी उल्लेख किया, और साथ ही सीफोर्ड कोर्ट एस्टेट्स लि. (उपरोक्त) में प्रतिपादित सिद्धांत का सहारा लेते हुए, निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला:—

“35. उपरोक्त निर्णयों के अवलोकन से, तथा 2002 के एस.ए.आर.एफ.ए.ई.एस.आई. अधिनियम की धारा 14 में निहित वैधानिक प्रावधानों को उनकी स्वतंत्र सत्ता में देखते हुए, हम इस दृढ़ मत पर हैं कि धारा 14 सुरक्षित लेनदारों को उनकी परिसंपत्तियों को सुरक्षित करने हेतु सहायता प्राप्त करने के लिए मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष जाने की परिकल्पना नहीं करती। सुरक्षित लेनदार महानगरीय क्षेत्रों में मुख्य महानगर दंडाधिकारी के समक्ष तथा गैर-महानगरीय क्षेत्रों में जिला दंडाधिकारी के समक्ष जा सकते हैं, न कि मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष।”

पूर्ण पीठ के निर्णय का अनुसरण उसी उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने टी.सी. रामदास (उपरोक्त) मामले में किया है। इस निर्णय में, न्यायालय ने भावी निरस्तीकरण के संबंध में दिए गए तर्क पर भी विचार किया और निम्नलिखित टिप्पणी की:

“15. भावी अधिनिर्णय का सिद्धांत सर्वप्रथम अमेरिकी न्यायशास्त्र में ग्रेट नॉर्दर्न रेलवे कंपनी बनाम सनबर्स्ट ऑयल एंड रिफाइनिंग कंपनी, 287 यू.एस. 358 (1932) में मान्यता प्राप्त हुआ। उक्त सिद्धांत को सर्वप्रथम भारत में गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य, एम.ए.एन.यू./एस.सी./0029/1967 : ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 1643 में लागू किया गया और तत्पश्चात् विभिन्न निर्णयों में इसका उल्लेख तथा अनुसरण किया गया; और इस प्रकार, भावी अधिनिर्णय अब भारतीय विधि प्रणाली का अभिन्न अंग है। यह सुव्यवस्थित है कि प्रतिलोम का निर्णय एक नवीन निर्णय होता है, क्योंकि उसने पूर्ववर्ती स्थापित नज़ीर को उलट दिया होता है। यह तब किया जाता है

57 (1993) सप्लीमेंटरी 1 एस.सी.सी. 730

58 (2003) 2 एस.सी.सी. 577

59 (2003) 4 एस.सी.सी. 712

60 (2005) 2 एस.सी.सी. 409

61 (2008) 3 एस.सी.सी. 279

जब कोई प्रथम प्रभाव का प्रश्न तय किया जाता है, या कम-से-कम ऐसा प्रश्न, जिस पर पूर्ववर्ती कोई प्रकरण प्रतिलोम निर्णय द्वारा आच्छादित न किया गया हो। वर्तमान प्रकरण में, के. अरोक्कियाराज, एम.ए.एन.यू./टी.एन./1796/ 2013 : 2013 (6) एम.एल.जे. 641 : 2013 (4) एल.डब्ल्यू. 485 में मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने विधि की स्थापित स्थिति को अस्थिर नहीं किया है। विधि की स्थापित स्थिति का निर्धारण प्रावधानों के साधारण पाठ के आधार पर किया गया है। अतः प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता की यह दलील कि पूर्ण पीठ का निर्णय भावी रूप से लागू होगा, स्वीकार्यता योग्य नहीं है और इसे स्पष्टतः अस्वीकार किया जाता है। संबंधित प्रावधान की भाषा सरल और स्पष्ट है, जिसमें किसी प्रकार का भ्रम नहीं है, और जिसे पूर्ण पीठ ने अपने निर्णय में व्याख्यायित किया है।

16. यह विधि का सुव्यवस्थित सिद्धांत है कि किसी ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित कोई भी आदेश, जिसे उस पर अधिकार-क्षेत्र प्राप्त नहीं है, शून्य होता है और अस्तित्वहीन माना जाता है; और परिणामस्वरूप, ऐसे आदेश के आधार पर की गई कोई भी कार्यवाही धराशायी हो जाती है। (देखें: मुख्य न्यायाधीश, ए.पी. बनाम एल.वी.ए. दीक्षितुलु, एम.ए.एन.यू./एस.सी./ 0416/1978 : (1979) 2 एस.सी.सी. 34; जेठेंद्रनाथ बनाम जुबिली हिल्स को-ऑपरेटिव हाउस बिल्डिंग सोसायटी, एम.ए.एन.यू./एस.सी./8138/2006 : (2006) 10 एस.सी.सी. 96; अशोक लेलेंड लि. बनाम तमिलनाडु राज्य, एम.ए.एन.यू./एस.सी./0200/2004 : (2004) 3 एस.सी.सी. 1; भारत संघ बनाम प्रमोद गुप्ता, एम.ए.एन.यू./एस.सी./0549/ 2005 : (2005) 12 एस.सी.सी. 1; नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी बनाम नीरज कुमार सिंह, एम.ए.एन.यू./एस.सी./0687/2007 : (2007) 2 एस.सी.सी. 481; हाशम अब्बास सैयद बनाम उस्मान अब्बास सैयद, एम.ए.एन.यू./एस.सी./5541/2006 : (2007) 2 एस.सी.सी. 355; दीपक एग्रो फूड्स बनाम राजस्थान राज्य, एम.ए.एन.यू./एस.सी./7812/ 2008 : (2008) 7 एस.सी.सी. 748; चंद्रभाई के. भोइर बनाम कृष्णा अर्जुन भोइर, एम.ए.एन.यू./एस.सी./8230/2008 : (2009) 2 एस.सी.सी. 315; तथा भारत संघ बनाम एसोसिएशन ऑफ यूनिफ़ाइड टेलीकॉम सर्विस प्रोवाइडर्स ऑफ इंडिया, एम.ए.एन.यू./एस.सी./ 1252/2011 : (2011) 10 एस.सी.सी. 543।

17. परिणामस्वरूप, सी.जे.एम. द्वारा पारित आपतित आदेश को निरस्त किया जाता

है, साथ ही प्रतिवादी बैंक को यह स्वतंत्रता प्रदान की जाती है कि वह विधि के प्रावधानों के अंतर्गत उपयुक्त अधिकार-क्षेत्र वाले मंच के समक्ष प्रतिकार प्राप्त करे।

30. मद्रास उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने **श्याम सुंदर रोहरा** (उपरोक्त) में, मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा **के. अरोक्कियाराज** (उपरोक्त) में अपनाए गए दृष्टिकोण को स्वीकार किया और यह निष्कर्ष निकाला कि 2002 अधिनियम की धारा 14 सुरक्षित लेनदारों को सी.जे.एम. के समक्ष जाने की अनुमति नहीं देती; बल्कि उन्हें महानगरीय क्षेत्रों में केवल सी.एम.एम. तथा गैर-महानगरीय क्षेत्रों में डी.एम. के समक्ष जाना होगा।

31. धारा 14, 2002 अधिनियम की शाब्दिक व्याख्या के अनुसार, ऐसा प्रतीत होता है कि सी.एम.एम. अथवा डी.एम., जिसके अधिकार-क्षेत्र में सुरक्षित परिसंपत्ति स्थित है, को ही सुरक्षित लेनदार द्वारा ऐसी परिसंपत्ति के कब्जे के लिए किए गए अनुरोध पर विचार करने का अधिकार प्रदान किया गया है। यह भी प्रतीत होता है कि नामित प्राधिकारी, अर्थात् *नमोदिष्ट व्यक्ति*, के समक्ष ही प्रतिकार उपलब्ध कराया गया है। यही वह दृष्टिकोण है जिसे बॉम्बे, कलकत्ता, मद्रास, मध्य प्रदेश तथा उत्तराखण्ड के उच्च न्यायालयों ने अपनाया है। वहीं दूसरी ओर, केरल, कर्नाटक, इलाहाबाद तथा आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालयों ने शाब्दिक व्याख्या से भिन्न मार्ग अपनाया है और उद्देश्यपरक व्याख्या का सहारा लेते हुए "सी.एम.एम." अभिव्यक्ति को विस्तारित अर्थ प्रदान किया है, ताकि गैर-महानगरीय क्षेत्रों में सी.जे.एम. को भी सम्मिलित किया जा सके। ऐसा संबंधित प्राधिकारी द्वारा की जाने वाली जाँच की प्रकृति के संदर्भ में किया गया है।

32. इसमें कोई विवाद नहीं है कि 2002 अधिनियम में "सी.एम.एम." तथा "डी.एम." अभिव्यक्तियों की परिभाषा नहीं दी गई है। अतः उनकी परिभाषा दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों से खोजी जा सकती है। यह भी अब सुव्यवस्थित है कि 2002 अधिनियम एक स्वयंपूर्ण संहिता है। यह भी स्वीकार किया गया है कि 2002 अधिनियम के अंतर्गत नामित प्राधिकारियों द्वारा की जाने वाली जाँच की प्रकृति, धारा 14 में स्पष्ट रूप से विनिर्दिष्ट है। वही परिस्थितियाँ और सीमाएँ प्रथम उपबंध में उप-धारा (1) के अंतर्गत धाराओं (i) से (ix) में उल्लिखित विषयों तक सीमित हैं, जिन्हें 2013 में सम्मिलित किया गया। उक्त उपबंध के सम्मिलित किए जाने से पूर्व भी, ऐसी जाँच में यह कभी भी खुला नहीं था कि पक्षकारों के अधिकारों से संबंधित किसी भी विवादास्पद प्रतिवेदन का किसी भी प्रकार से

न्यायनिर्णयन किया जाए। उक्त अधिकारी केवल याचिका की प्रामाणिकता का सत्यापन कर सकते हैं और संतुष्ट होने पर कि यह प्रामाणिक है, इसका निर्णय सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय पर छोड़ा जा सकता है।

33. यह अवलोकन करना पर्याप्त है कि वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन निर्दिष्ट प्राधिकारी द्वारा की गई जांच *स्वतंत्र प्रकृति* की जांच है। उसमें, मुख्यतः यह पक्षकारों द्वारा दायर शपथ-पत्र तथा उन पर आधारित दस्तावेजों के सत्यापन से संबंधित एक प्रशासनिक या कार्यपालिका संबंधी कार्य है। उक्त जांच का समापन निर्धारित समय-सीमा के भीतर किया जाना आवश्यक है। ऐसी जांच करते समय, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अवलोकित किया गया है, प्राधिकारी को पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत प्रासंगिक तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। यह इस बात का पूर्वानुमान करता है कि यद्यपि यह एक अर्ध-न्यायिक जांच है, तथापि यह एक गैर-न्यायिक प्रक्रिया है। यह जांच विषयगत संपत्ति के संबंध में अथवा इस तथ्य के संबंध में कि लेन-देन कपटपूर्ण है या अन्यथा, पक्षकारों के परस्पर अधिकारों के अधिनिर्णयन का परिणाम नहीं देती है।

34. यह उल्लेखनीय है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन निर्दिष्ट विषयों के संबंध में सी.एम.एम. और सी.जे.एम. की शक्तियाँ तथा कार्य समान और तुल्य हैं। ये अभिव्यक्तियाँ (सी.एम.एम. और सी.जे.एम.) परस्पर विनिमेय तथा एक-दूसरे के पर्याय हैं। इसके अतिरिक्त, वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14, उसके अधीन किए गए सुरक्षित ऋणदाता के अनुरोध से निपटने से सी.जे.एम. को स्पष्ट रूप से अपवर्जित नहीं करती है। वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन संबंधित प्राधिकारी द्वारा प्रयोज्य शक्ति अपने स्वभाव में न्यायिक न होकर राज्य की बाध्यकारी शक्ति है। इसके अतिरिक्त, उधारकर्ता अथवा उधारकर्ता के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति या इस संदर्भ में प्रस्तावित कार्रवाई से प्रभावित होने की संभावना रखने वाले, जो विषयगत संपत्ति के कब्जे में हैं, को वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 17 के अधीन वैधानिक उपचार तथा/या भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन न्यायिक पुनरावलोकन उपलब्ध है। उस दृष्टि से, उधारकर्ता/पट्टेदार को किसी प्रकार की हानि होने की संभावना नहीं है; और न ही यह कहना संभव है कि उन्हें विधि में उपचारविहीन छोड़ दिया गया है। साथ ही, वह सुरक्षित ऋणदाता जो वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन प्रक्रिया का अवलंब करता है, उसे कोई अतिरिक्त अथवा विशेष लाभ प्राप्त नहीं होता है। इन सभी पहलुओं का समग्र रूप से विचार करने पर, "सी.एम.एम." अभिव्यक्ति को व्यापक अर्थ देना, जिसमें गैर-महानगरीय क्षेत्र के संदर्भ में

सी.जे.एम. को सम्मिलित किया जाए—जो अन्यथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में विनिर्दिष्ट अनुसार प्रशासनिक तथा न्यायिक कार्यों के निर्वहन के लिए सक्षम है—उचित है। ऐसी व्याख्या प्रावधान को अधिक सार्थक बनाएगी। ऐसी व्याख्या विधायी अभिप्राय के प्रतिकूल नहीं है और न ही यह किसी अयोग्य व्यक्ति या प्राधिकारी को ऐसी जांच करने की अनुमति देने का मामला है, जो वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 में विनिर्दिष्ट विषयों तक सीमित है।

35. इस प्रकार का दृष्टिकोण केरल उच्च न्यायालय द्वारा वर्ष 2006 में ही अपनाया गया था और इसी आधार पर अन्य उच्च न्यायालयों (कर्नाटक, इलाहाबाद और आंध्र प्रदेश) के निर्णय भी हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि केरल उच्च न्यायालय के निर्णय को इस न्यायालय के समक्ष एस.एल.पी. (सी) संख्या 1671 वर्ष 2009 में चुनौती दी गई थी, जिसे 2 फरवरी, 2009 को खारिज कर दिया गया।

36. अब हम **स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक (उपरोक्त)** के निर्णय की ओर अग्रसर होते हैं। न्यायालय के समक्ष यह तर्क विचारार्थ प्रस्तुत किया गया था कि वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन उपाय का अवलंब करने से पूर्व सुरक्षित ऋणदाता को अनिवार्यतः सुरक्षित आस्तियों का कब्जा प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए और वह केवल तभी उस उपाय का सहारा ले सकता है जब वह उस प्रयास में असफल हो तथा ऐसे प्रयास के प्रति प्रतिरोध का सामना करे। उस तर्क पर विचार करते हुए, न्यायालय ने वर्ष 2002 के अधिनियम की धाराओं 13, 14 और 15 का विश्लेषण किया और यह अभिमत व्यक्त किया कि वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14, उस सुरक्षित ऋणदाता को—जो सुरक्षित आस्तियों का कब्जा प्राप्त करने के लिए “राज्य की बाध्यकारी शक्ति” की सहायता चाहता है—यह सक्षम बनाती है कि वह उस प्राधिकारी को, जो उसमें निर्दिष्ट है और जिसके अधिकार-क्षेत्र में सुरक्षित आस्ति स्थित है, लिखित रूप में अनुरोध करे। यह भी अवलोकित किया गया कि वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन ऐसा अनुरोध प्राप्त होने के पश्चात् प्राधिकारी से अपेक्षा नहीं की जाती कि वह विषय का और कोई परीक्षण करे, सिवाय इसके कि वह सुरक्षित ऋणदाता से यह सत्यापित करे कि क्या अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन सूचना पूर्व में दी जा चुकी है या नहीं तथा क्या सुरक्षित आस्ति उसके अधिकार-क्षेत्र में स्थित है। इस स्तर पर किसी भी प्रकार का अधिनिर्णयन नहीं होता है। न्यायालय ने अभिलेखित निर्णय के कंडिका 23 में यह भी उल्लेख किया कि वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 में प्रथम उपबंध जोड़े जाने के पश्चात्, निर्दिष्ट प्राधिकारी को केवल उपबंध (i) से

(ix) में उल्लिखित विषयों के संबंध में ही स्वयं को संतुष्ट करना होता है। इस निर्णय की कंडिका 25 में न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया:

“25. दंडाधिकारी की संतुष्टि, जैसा कि धारा 14(1) के द्वितीय उपबंध के अधीन परिकल्पित है, अनिवार्यतः यह अपेक्षा करती है कि दंडाधिकारी शपथ-पत्र में किए गए अभिकथनों की तथ्यात्मक शुद्धता की परीक्षा करे, न कि लेन-देन की विधिक सूक्ष्मताओं की। अपनी संतुष्टि अभिलिखित करने के पश्चात् ही दंडाधिकारी सुरक्षित आस्ति के कब्जा ग्रहण करने के संबंध में उपयुक्त आदेश पारित कर सकता है।”

न्यायालय ने तत्पश्चात् अभिलेखित निर्णय की कंडिका संख्या 33 और 36 में निम्नानुसार अवलोकन किया:

“33. हम इस मत के हैं कि उच्च न्यायालय ने इस प्रकार का निष्कर्ष अभिलिखित करने में स्पष्ट त्रुटि की है। नियम 8 की भाषा ऐसी व्याख्या की अपेक्षा नहीं करती है। दूसरी ओर, एक दंडाधिकारी, जिसकी कार्यप्रणाली दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 द्वारा संरचित है, को उक्त संहिता के उपबंधों के अनुसार कार्य करना आवश्यक है, जब तक कि किसी अन्य विधि द्वारा स्पष्ट रूप से अन्यथा निर्देशित न किया गया हो। यह ऐसा मामला नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 ने उस प्रक्रिया का निर्धारण किया हो जिसका पालन दंडाधिकारी को उस स्थिति में करना है जब उसे संपत्ति का कब्जा लेना हो। उदाहरणार्थ, संहिता की धारा 83 के अधीन, एक आपराधिक न्यायालय को उद्घोषित अपराधी की चल अथवा अचल संपत्ति, या दोनों, को कुर्क करने का अधिकार है। धारा 83 की उपधाराएँ (3) और (4) विशेष रूप से यह उपबंध करती हैं कि उपधारा (1) के अधीन आपराधिक न्यायालय द्वारा कुर्की का आदेश पारित किए जाने पर, ऐसी कुर्की की विषय-वस्तु संपत्ति को या तो जप्त किया जाएगा अथवा उसका कब्जा लिया जाएगा, जैसा भी मामला हो, इस तथ्य पर निर्भर करते हुए कि संपत्ति चल है या अचल। दोनों उपधाराएँ रिसीवर की नियुक्ति का भी विचार करती हैं। उपधारा (6) के अधीन यह घोषित किया गया है कि धारा 83 के अधीन नियुक्त रिसीवर की शक्तियाँ, कर्तव्य और दायित्व वही होंगे जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन नियुक्त रिसीवर के होते हैं।

36. अतः, सुरक्षित ऋणदाता द्वारा सुरक्षित आस्तियों का कब्जा प्राप्त करने के लिए तीन विधियाँ होंगी:

36.1. (i) प्रथम विधि वह होगी जिसमें सुरक्षित ऋणदाता नियम 8(1) के अधीन अपेक्षित सूचना देता है और जहाँ उसे किसी प्रकार का प्रतिरोध नहीं मिलता है। ऐसी स्थिति में, प्राधिकृत अधिकारी नियम 8(2) के पश्चात् विनिर्दिष्ट चरणों का पालन करते हुए कब्जा प्राप्त करेगा और तत्पश्चात् सुरक्षित आस्तियों की विक्रय की प्रक्रिया अपनाएगा ताकि सुरक्षित ऋणदाता द्वारा दावा की गई राशि की वसूली की जा सके।”

36.2. (ii) द्वितीय स्थिति उस समय उत्पन्न होगी जब सुरक्षित ऋणदाता को नियम 8(1) के अधीन सूचना दिए जाने के पश्चात् उधारकर्ता से प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में, वह अधिनियम की धारा 14 के अधीन प्रदत्त तंत्र का अवलंब करेगा, अर्थात् दंडाधिकारी के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करेगा। दंडाधिकारी, धारा 14 में उपबंधित अनुसार, आवेदन का परीक्षण करेगा और तत्पश्चात् संतुष्ट होने पर, धारा 14(1-ए) के अधीन उपबंधित अनुसार, अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी को आस्तियों तथा दस्तावेजों का कब्जा लेने के लिए नियुक्त करेगा। इस प्रयोजन के लिए दंडाधिकारी संबंधित अधिकारी को आवश्यकतानुसार बल प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है। कब्जा लिए जाने के पश्चात् आस्तियाँ तथा दस्तावेज सुरक्षित ऋणदाता को प्रेषित कर दिए जाएंगे।

36.3. (iii) तृतीय स्थिति वह होगी जिसमें सुरक्षित ऋणदाता अधिनियम की धारा 14 के अधीन सीधे संबंधित दंडाधिकारी के समक्ष उपस्थित होता है। तत्पश्चात् दंडाधिकारी, धारा 14 में उपबंधित अनुसार, आवेदन का परीक्षण करेगा और संतुष्ट होने पर, आस्तियों तथा दस्तावेजों का कब्जा लेने तथा उन्हें उपर्युक्त कंडिका 36.2 (ii) के अनुसार सुरक्षित ऋणदाता को प्रेषित करने के लिए अपने अधीनस्थ अधिकारी को प्राधिकृत करेगा।

36.4. उपर्युक्त तीनों स्थितियों में से किसी में भी, जब कब्जा सुरक्षित ऋणदाता को सौंप दिया जाता है, तब सुरक्षित आस्तियों के संरक्षण, मूल्यांकन तथा विक्रय से संबंधित नियम 8 के परवर्ती विनिर्दिष्ट उपबंध, तथा सिक्योरिटी इंटेरेस्ट (एनफोर्समेंट) नियम, 2002 के अन्य परवर्ती नियम लागू होंगे।

37. स्वीकारोपरांत, न्यायालय को इस वाद-समूह में हमारे विचारार्थ उत्पन्न विशिष्ट प्रश्न पर विचार करने के लिए आहूत नहीं किया गया था। अर्थात्, क्या वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन सुरक्षित ऋणदाता द्वारा किए गए अनुरोध से निपटने के लिए सी.जे.एम. उसी प्रकार सक्षम है, जिस प्रकार महानगरीय क्षेत्रों में सी.एम.एम. तथा गैर-महानगरीय क्षेत्रों में डी.एम. द्वारा किया जा सकता है। तथापि, यह उल्लेखनीय है कि यह निर्णय स्पष्ट रूप से उस जांच की प्रकृति को निरूपित करता है, जो वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 में उल्लिखित प्राधिकारी द्वारा की जानी अपेक्षित है। अपने स्वभाव से वह जांच एक प्रशासनिक अथवा कार्यपालिका उपाय है और उक्त निर्णय में प्रयुक्त वाक्यांश को ग्रहण करते हुए—“राज्य की बाध्यकारी शक्ति”—सुरक्षित आस्तियों का कब्जा प्राप्त करने के लिए है। यह कहा जा सकता है कि चूँकि प्राधिकारी को जांच करना और आदेश पारित करना अपेक्षित है, इसलिए वह आंशिक रूप से अर्ध-न्यायिक जांच का स्वरूप धारण करता है। किसी भी दशा में, उक्त प्राधिकारी को संबंधित पक्षकारों के अधिकारों के संबंध में उत्पन्न किसी भी विवादास्पद प्रश्न का अधिनिर्णयन करने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

38. **हर्षद गोवर्धन सोनडागर (उपरोक्त)** में प्रतिपादित व्याख्या पर भी निर्भरता रखी गई, जिसमें अपीलकर्ताओं ने स्वयं को बंधक रखी गई परिसंपत्ति (सुरक्षित आस्ति) के किरायेदार होने का दावा किया था; और चूँकि उधारकर्ता (उसके मकान-मालिक/स्वामी) ने चूक की थी, सुरक्षित ऋणदाता ने सुरक्षित आस्ति के प्रवर्तन हेतु वर्ष 2002 के अधिनियम के उपबंधों का अवलंब किया था। उस पृष्ठभूमि में, परिसरों का कब्जा लेने तथा उसे सुरक्षित ऋणदाता को सौंपने के लिए सी.एम.एम., मुंबई के समक्ष वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन आवेदन प्रस्तुत किया गया। सुरक्षित ऋणदाता की इस कार्रवाई को चुनौती से निपटते हुए, न्यायालय ने वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 का अवलोकन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि सुरक्षित आस्ति के अंतरण तथा उसकी वसूली के उद्देश्य से, सुरक्षित ऋणदाता को पट्टेदार से सुरक्षित आस्ति का कब्जा प्राप्त करने के लिए सी.एम.एम. या डी.एम. की सहायता की आवश्यकता होगी, जहाँ पट्टा संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 111 में उल्लिखित किसी भी विधि द्वारा समाप्त हो चुका हो। इसके पश्चात् न्यायालय ने उस प्रश्न की परीक्षा की कि ऐसे पट्टेदार को कौन-कौन से उपचार उपलब्ध हैं, जब उसे वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 13 के अधीन सुरक्षित ऋणदाता द्वारा की गई किसी कार्रवाई के कारण बेदखल किए जाने का खतरा हो। उस संदर्भ में, न्यायालय ने यह अवलोकन किया कि वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 34 यह पूर्णतः स्पष्ट करती है कि वर्ष 2002 के

अधिनियम द्वारा प्रदत्त या उसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली किसी कार्रवाई के संबंध में किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी द्वारा कोई निषेधाज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती। यह निर्णय भी, यदि ऐसा कहा जाए, वर्तमान वादों में विचाराधीन प्रश्न से सर्वथा भिन्न मुद्दे से संबंधित है।

39. यह अब *अप्रस्थापित प्रश्न* नहीं रह गया है कि सी.जे.एम. को सी.एम.एम. के समकक्ष माना जाता है, उन प्रयोजनों के लिए जिनका उल्लेख दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में किया गया है; और ये अभिव्यक्तियाँ परस्पर विनिमेय हैं तथा एक-दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होती हैं। इस न्यायालय ने *ऑल इंडिया जजेज एसोसिएशन (उपरोक्त)* में, कंडिका 31 में, निम्नानुसार अभिमत व्यक्त किया है:

“31. जैसा कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, शेट्टी आयोग ने यह अनुशंसा की थी कि मुख्य महानगरीय दंडाधिकारी को जिला न्यायाधीशों के संवर्ग में रखा जाना चाहिए। हमारे मत में, यह न तो उचित है और न ही व्यावहारिक। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंधों के अधीन मुख्य महानगरीय दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई अपर सत्र न्यायाधीश या सत्र न्यायाधीश द्वारा की जानी अपेक्षित है। यदि अपर सत्र न्यायाधीश और मुख्य महानगरीय दंडाधिकारी दोनों एक ही संवर्ग से संबंधित हों, तो यह विरोधाभासी होगा कि उसी संवर्ग के एक अधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील उसी संवर्ग के दूसरे अधिकारी के समक्ष जाए। यदि वे शेट्टी आयोग की अनुशंसा के अनुसार एक ही संवर्ग में हों, तो यह संभव होगा कि कनिष्ठ अधिकारी अपर सत्र न्यायाधीश के रूप में कार्य कर रहा हो, जबकि वरिष्ठ अधिकारी मुख्य महानगरीय दंडाधिकारी का पद धारण किए हुए हो। यह संभव नहीं हो सकता कि वरिष्ठ अधिकारी द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध अपील की सुनवाई कनिष्ठ अधिकारी द्वारा की जाए। शेट्टी आयोग द्वारा यह कोई कारण नहीं बताया गया है कि मुख्य महानगरीय दंडाधिकारी का पद जिला न्यायाधीश द्वारा ही भरा जाए, विशेषतः तब जब मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के पदों के संबंध में—जिनके कर्तव्य मुख्य महानगरीय दंडाधिकारी के कर्तव्यों के समतुल्य हैं—शेट्टी आयोग ने यह अनुशंसा की है, और हमारे मत में उचित रूप से, कि उन्हें असैनिक न्यायाधीश (सीनियर डिवीजन) में से भरा जाना चाहिए। मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी तथा मुख्य महानगरीय दंडाधिकारी के कर्तव्यों और स्वरूप को ध्यान में रखते हुए, केवल उनके स्थान में अंतर होने के कारण, मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी और मुख्य महानगरीय दंडाधिकारी

के पदों को समकक्ष माना जाना चाहिए और उन्हें असैनिक न्यायाधीश (सीनियर डिवीजन) के संवर्ग में रखा जाना चाहिए। तदनुसार, हम आदेश देते हैं।”

40. यह ध्यान देने योग्य है कि वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 स्वयं में न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र से संबंधित उपबंध नहीं है। यह एक उपचारात्मक उपाय है, जो सुरक्षित ऋणदाता को उपलब्ध है, जो उधारकर्ता द्वारा प्रदत्त प्रतिभूति के प्रवर्तन के उद्देश्य से सुरक्षित आस्ति का कब्जा लेने के लिए प्राधिकृत अधिकारी की सहायता प्राप्त करना चाहता है। प्राधिकृत अधिकारी मूलतः प्रशासनिक अथवा कार्यपालिका संबंधी कार्यों का निर्वहन करता है, ताकि राज्य की बाध्यकारी शक्ति के आधार पर सुरक्षित ऋणदाता को सहायता प्रदान की जा सके और बकाया देयों की वसूली के अंतर्निहित विधायी अभिप्राय को प्रभावी किया जा सके। अधिक से अधिक, प्राधिकृत अधिकारी द्वारा शक्ति का प्रयोग अर्ध-न्यायिक कार्य का आभास दे सकता है, जिसे कार्यपालिका दंडाधिकारी द्वारा भी संपादित किया जा सकता है। प्राधिकृत अधिकारी से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह संबंधित पक्षकारों द्वारा उठाए गए विवादास्पद प्रश्नों का अधिनिर्णयन करे, बल्कि वह केवल धारा 14 के प्रथम उपबंध में उल्लिखित अनुपालन की पुष्टि करे; और इस संबंध में संतुष्ट होने पर, सुरक्षित आस्तियों का कब्जा ग्रहण कराने के लिए आदेश पारित करे।

41. यह विधिवत स्थापित है कि कोई भी सिविल न्यायालय किसी ऐसे विषय के संबंध में आरंभ की गई कार्रवाई में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, जिसका निर्धारण ऋण वसूली अधिकरण या ऋण वसूली अपीलीय अधिकरण को वर्ष 2002 के अधिनियम के अधीन या उसके द्वारा करने का अधिकार प्रदान किया गया है; और विशेष रूप से, वर्ष 2002 के अधिनियम के अधीन या बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 के अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली किसी कार्रवाई के संबंध में। यह व्यवस्था वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 34 द्वारा की गई है।

42. उधारकर्ताओं अथवा उधारकर्ताओं के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्तियों ने वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 35 पर बल दिया है। उक्त धारा इस प्रकार है:

**35. अन्य विधियों पर इस अधिनियम के उपबंधों का अधिभावी प्रभाव।—** इस अधिनियम के उपबंध, वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि में निहित या किसी ऐसी लिखत में निहित, जो किसी ऐसी विधि के बल से प्रभावी हो, किसी असंगति के होते हुए भी प्रभावी होंगे।

43. इस उपबंध की व्याख्या से स्पष्ट रूप से यह संकेत मिलता है कि इस अधिनियम के उपबंध वर्तमान में प्रवृत्त किसी भी अन्य विधि पर अधिभावी होंगे। प्रश्न यह है: क्या वर्ष 2002 के अधिनियम के उपबंध दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंधों पर अधिभावी होंगे, जिसके अधीन सी.एम.एम. द्वारा संपादित किए जाने वाले कार्य सी.जे.एम. के समान हैं। आगे, "सी.एम.एम." और "सी.जे.एम." अभिव्यक्तियाँ दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में परस्पर विनिमेय रूप से प्रयुक्त होती हैं और एक-दूसरे के पर्याय मानी जाती हैं। धारा 14, भले ही शाब्दिक रूप से पढ़ी जाए, किसी भी प्रकार से यह संकेत नहीं करती कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन सी.एम.एम. और सी.जे.एम. को प्रदत्त अधिकार-क्षेत्र और शक्तियों का विनियोजन वर्ष 2002 के अधिनियम द्वारा परिवर्तित किया गया है। इस प्रकार समझे जाने पर, वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 को *संकीर्ण अर्थ में* दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंधों के साथ असंगत नहीं माना जा सकता और न ही इसके विपरीत। यदि ऐसा है, तो वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 35 में किया गया प्रावधान, वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 की व्यापक व्याख्या पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा। जबकि, सुरक्षित ऋणदाताओं (बैंकों) द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन में यह बल दिया गया है कि वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 37 विचाराधीन प्रश्न का उत्तर प्रदान करती है। उक्त धारा इस प्रकार है:

**"37. अन्य विधियों का अनुप्रयोग वर्जित नहीं।—** इस अधिनियम के उपबंध अथवा इसके अधीन बनाए गए नियम, कंपनी अधिनियम, 1956, प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1956, भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड अधिनियम, 1992, बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 अथवा वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों के अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अपकर्ष में।"

इस उपबंध का साधारण पाठ यह संकेत करता है कि वर्ष 2002 के अधिनियम के उपबंध अथवा इसके अधीन बनाए गए नियम, उक्त अधिनियमों या "वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि" के अतिरिक्त होंगे। यह कहने के पश्चात् कि वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 के उपबंध किसी भी प्रकार से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंधों के साथ असंगत नहीं हैं, यह अनुगामी रूप से निष्कर्ष निकलता है कि वर्ष 2002 के अधिनियम के उपबंध संहिता के अतिरिक्त हैं, न कि उसके अपकर्ष में।

44. यह अवलोकन करना पर्याप्त है कि वर्ष 2002 के अधिनियम के विषय और

उद्देश्य तथा धारा 14 के अंतर्निहित विधायी अभिप्राय और प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए, उक्त उपबंध की संदर्भानुकूल तथा उद्देश्यपरक व्याख्या विधायी अभिप्राय को और अधिक प्रभावी बनाएगी। उसमें, धारा 14 के अधीन प्राधिकृत अधिकारी को प्रदत्त शक्ति परिमित है और वह केवल राज्य की बाध्यकारी शक्ति के प्रयोग की प्रकृति की है, ताकि सुरक्षित आस्तियों का कब्जा ग्रहण करने की प्रक्रिया को सुगम बनाया जा सके।

45. अब सामान्य उपबंध अधिनियम, 1897 की धारा 17 का उल्लेख करना समीचीन होगा। उक्त धारा इस प्रकार है:

“17— पदाधिकारियों का प्रतिस्थापन।— (1) किसी [केंद्रीय अधिनियम] या इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् बनाए गए किसी विनियम में, किसी विधि के अनुप्रयोग को उस समय किसी पद के कार्यों का निर्वहन कर रहे प्रत्येक व्यक्ति या व्यक्तियों की संख्या के लिए सूचित करने के प्रयोजन से, उस पद के उस पदाधिकारी के आधिकारिक पदनाम का उल्लेख करना पर्याप्त होगा, जो वर्तमान में उन कार्यों का निर्वहन कर रहा है, अथवा उस अधिकारी का, जिसके द्वारा वे कार्य सामान्यतः संपादित किए जाते हैं।

(2) यह धारा 3 जनवरी, 1868 के पश्चात् बनाए गए सभी [केंद्रीय अधिनियमों] पर तथा 14 जनवरी, 1887 के पश्चात् बनाए गए सभी विनियमों पर भी लागू होगी।”

इस न्यायालय ने *जनार्दन बनाम महाराष्ट्र राज्य*<sup>62</sup> में कुछ समान प्रकृति की चुनौती पर विचार किया था। उस मामले में, चुनौती बॉम्बे जुआ निवारण अधिनियम, 1887 की धारा 6 के अधीन दंडनीय अपराधों के संबंध में सहायक पुलिस आयुक्त द्वारा जारी तलाशी वारंट के विरुद्ध थी। न्यायालय ने उस चुनौती को बॉम्बे सामान्य उपबंध अधिनियम, 1886 की धारा 17 पर निर्भर करते हुए निरस्त कर दिया, जो कि सामान्य उपबंध अधिनियम, 1897 की धारा 17 के *समान विषय-वस्तु वाला* है। न्यायालय ने अभिमत व्यक्त किया कि यद्यपि जुआ अधिनियम की धारा 6 में पुलिस आयुक्त के पद को प्राधिकृत अधिकारी के रूप में निर्दिष्ट किया गया था, तथापि बॉम्बे पुलिस अधिनियम, 1951 की धारा 2(6) के व्यापक प्रभाव को ध्यान में रखते हुए—जिसमें “पुलिस आयुक्त” पद में सहायक पुलिस आयुक्त को भी सम्मिलित माना गया है—यह धारित किया गया कि सहायक पुलिस आयुक्त द्वारा जारी तलाशी वारंट वैध था। उक्त चुनौती से निपटते हुए न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन

62 (1978) 2 एस.सी.सी. 465

किया:

“8. इस परिभाषा का विश्लेषण करने पर यह प्रतीत होता है कि सामान्य उपबंध अधिनियम के पश्चात् बनाए गए किसी भी अधिनियम में उल्लिखित किसी अधिकारी का कोई भी आधिकारिक पदनाम, विधि की कल्पना द्वारा, उस आधिकारिक पदनाम में ऐसे किसी भी पदनाम को सम्मिलित माना जाएगा, जिसका उल्लेख सामान्य उपबंध अधिनियम के पश्चात् पारित किसी अधिनियम में किया गया हो।

9. इसके अतिरिक्त, न केवल उक्त अधिकारी का आधिकारिक पदनाम, बल्कि उस अधिकारी द्वारा संपादित कार्यों को भी, अनुवर्ती अधिनियम में निर्दिष्ट अधिकारी द्वारा संपादित माना जाएगा। अतः, जुआ अधिनियम की धारा 6 तथा सामान्य उपबंध अधिनियम की धारा 17(1) का संयुक्त प्रभाव यह होगा कि “पुलिस आयुक्त” शब्द में वे सभी अधिकारी सम्मिलित होंगे जो पुलिस आयुक्त के कार्यों का निर्वहन या संपादन कर रहे हैं, जैसा कि परवर्ती अधिनियम, अर्थात् पुलिस अधिनियम, के अधीन परिभाषित या प्राधिकृत है। इस प्रकार यह स्पष्ट होगा कि पुलिस अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (6) स्पष्ट रूप से यह उल्लेख करती है कि “पुलिस आयुक्त” शब्द में सहायक पुलिस आयुक्त भी सम्मिलित होगा। अतः उपधारा (6) इस प्रकार है:

“2. इस अधिनियम में, जब तक कि विषय या प्रसंग में कुछ प्रतिकूल न हो:

\* \* \*

(6) ... पुलिस आयुक्त में अतिरिक्त पुलिस आयुक्त, पुलिस उप-महानिरीक्षक (जिसमें पुलिस वायरलेस के निदेशक तथा धारा 8-ए के अधीन नियुक्त पुलिस महानिरीक्षक सम्मिलित हैं), पुलिस उपायुक्त तथा सहायक पुलिस आयुक्त सम्मिलित होंगे...”

पुलिस अधिनियम की धारा 11 इस प्रकार है:

11. (1) राज्य सरकार उस किसी क्षेत्र के लिए, जिसके लिए धारा 7 के अधीन पुलिस आयुक्त नियुक्त किया गया है, उतनी संख्या में सहायक पुलिस आयुक्तों की नियुक्ति कर सकती है, जितनी वह उपयुक्त समझे।

(2) उपधारा (1) के अधीन नियुक्त सहायक पुलिस आयुक्त ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा तथा ऐसे कर्तव्यों और कार्यों का निर्वहन करेगा, जो इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन या वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन संपादित किए जा सकते

हैं, अथवा जो उसे राज्य सरकार के सामान्य या विशेष आदेशों के अधीन पुलिस आयुक्त द्वारा सौंपे जाएँ।”

पुलिस अधिनियम की धारा 11 के अवलोकन से यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता है कि उपधारा (1) के अधीन नियुक्त सहायक पुलिस आयुक्त ऐसे कर्तव्यों और कार्यों का निर्वहन करेगा, जो इस अधिनियम या वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन संपादित किए जा सकते हैं, जिसमें निस्संदेह जुआ अधिनियम भी सम्मिलित है, जो उस समय प्रवृत्त विधि थी जब पुलिस अधिनियम पारित किया गया था। इसके अतिरिक्त, सहायक पुलिस आयुक्त उन कार्यों का भी निर्वहन कर सकता है, जो उसे राज्य सरकार के सामान्य या विशेष आदेशों के अधीन आयुक्त द्वारा सौंपे जा सकते हैं। सरकार द्वारा आयुक्त को शक्तियों के प्रत्यायोजन का उपबंध पुलिस अधिनियम की धारा 10(2) में निहित है, जो इस प्रकार है:

“10. (2) प्रत्येक ऐसा उपायुक्त, आयुक्त के आदेशों के अधीन, इस अधिनियम या वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों के अधीन आयुक्त द्वारा प्रयोग की जाने वाली अथवा संपादित किए जाने वाली किसी भी शक्ति, कार्य तथा कर्तव्य का प्रयोग और निर्वहन करेगा, जो इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा किए गए सामान्य या विशेष आदेशों के अनुसार होगा।”

10. उच्च न्यायालय ने तथ्य के रूप में यह पाया है कि राज्य सरकार द्वारा दिनांक 10 मार्च, 1967 की एक अधिसूचना जारी की गई थी, जिसके द्वारा नागपुर सहित सभी सहायक पुलिस आयुक्तों को पुलिस आयुक्त की शक्तियाँ और कर्तव्य प्रदान किए गए थे। इस प्रकार, वर्तमान मामले में, जिस समय अपराध किया गया, उस समय दो स्थितियाँ विद्यमान थीं: (1) नागपुर में, जहाँ अपराध घटित हुआ, वहाँ पुलिस आयुक्त नियुक्त था, और (2) पुलिस आयुक्त को सरकार की अधिसूचना द्वारा यह शक्ति प्रदान की गई थी कि वह अपने कृत्यों, शक्तियों और कर्तव्यों का प्रत्यायोजन सहायक पुलिस आयुक्त को कर सके। इन परिस्थितियों में, अतः हमें प्रतिवादी के इस कथन को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होती कि सामान्य उपबंध अधिनियम की धारा 17 तथा पुलिस अधिनियम के उपबंधों के संयुक्त पठन के आलोक में, जुआ अधिनियम की धारा 6 में प्रयुक्त “पुलिस आयुक्त” पद में वह सहायक पुलिस आयुक्त भी सम्मिलित होगा, जिसे राज्य सरकार द्वारा पुलिस अधिनियम की धारा 10(2) के अधीन विधिसम्मत और वैध रूप से पुलिस आयुक्त की शक्तियाँ, कृत्य और कर्तव्य

सौंपे गए हों। चूँकि सामान्य उपबंध अधिनियम एक ऐसा अधिनियम है, जो जुआ अधिनियम के प्रवर्तन से पूर्व पारित किया गया था, अतः जुआ अधिनियम की धारा 6 में प्रयुक्त “पुलिस आयुक्त” पद की परिधि और विस्तार का अर्थ निर्धारित करने के लिए सामान्य उपबंध अधिनियम की धारा 17 का सहारा लिया जा सकता है।

11. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने, तथापि, यह प्रतिपादित किया कि सरकार द्वारा पुलिस आयुक्त अथवा सहायक पुलिस आयुक्त को कृत्यों के प्रत्यायोजन की शक्ति केवल पुलिस अधिनियम द्वारा आच्छादित विषयों तक ही सीमित हो सकती है और उससे आगे नहीं। तथापि, मैं इस कथन से सहमत होने में असमर्थ हूँ, क्योंकि यह सामान्य उपबंध अधिनियम की धारा 17 के प्रतिपादित उद्देश्य की पूर्णतः उपेक्षा करता है, जिसे ऐसी विसंगतियों को दूर करने के लिए अधिनियमित किया गया है, और वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निःसंदेह लागू होने वाले सामान्य उपबंध अधिनियम के उपबंधों की उपेक्षा करते हुए पुलिस अधिनियम के उपबंधों की पूर्ण पृथक्ता में व्याख्या करना संभव नहीं है। अतः, इन कारणों से, अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत द्वितीय कथन भी असफल होता है।”

(बल दिया गया)

उपर्युक्त सहमति निर्णय में, इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया:

“19. यह विचारणीय है कि क्या सहायक पुलिस आयुक्त को उस समय, जब उसने विशेष वारंट जारी किया, अधिनियम की धारा 6(1) के अधीन पुलिस आयुक्त के कृत्यों का निर्वहन करने वाला माना जा सकता है। इस संदर्भ में बॉम्बे पुलिस अधिनियम, 1951 की धारा 11(2) का उल्लेख किया जा सकता है, जो इस प्रकार है:

“11.(2) उपधारा (1) के अधीन नियुक्त सहायक पुलिस आयुक्त ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा तथा ऐसे कर्तव्यों और कृत्यों का निर्वहन करेगा, जो इस अधिनियम या वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों के अधीन संपादित किए जा सकते हैं अथवा जो उसे राज्य सरकार के सामान्य या विशेष आदेशों के अधीन पुलिस आयुक्त द्वारा सौंपे जाएँ।”

अतः सहायक पुलिस आयुक्त के लिए यह अनुमेय था कि वह न केवल उन शक्तियों का प्रयोग

करे तथा उन कर्तव्यों और कार्यों का निर्वहन करे, जिन्हें वह बॉम्बे पुलिस अधिनियम के उपबंधों या वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन कर सकता था, बल्कि उन कर्तव्यों और कार्यों का भी निर्वहन करे, जो उसे राज्य सरकार के सामान्य या विशेष आदेशों के अधीन पुलिस आयुक्त द्वारा सौंपे गए थे। इस संबंध में उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार के आदेश ए.पी.ओ.-3463-सी-2896-(III)-(ई)-V, दिनांक 10 मार्च, 1967 का संज्ञान लिया है, जिसके द्वारा सभी पुलिस आयुक्तों को यह अधिकार प्रदान किया गया था कि वे अपने अधीन कार्यरत सहायक पुलिस आयुक्तों को न केवल बॉम्बे पुलिस अधिनियम, 1951 के उपबंधों के अधीन, बल्कि वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन भी अपनी किसी भी शक्ति, कर्तव्य और कार्य का प्रत्यायोजन कर सकते हैं। ऐसे आदेश के अस्तित्व को वस्तुतः हमारे समक्ष चुनौती नहीं दी गई है। अतः सहायक पुलिस आयुक्त वह पदाधिकारी था, जो बॉम्बे सामान्य उपबंध अधिनियम की धारा 17 के आधार पर, अधिनियम की धारा 6(1) के अधीन पुलिस आयुक्त के कृत्यों का निर्वहन कर सकता था, विशेष वारंट जारी करने के संबंध में, जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया। यह भी विवादित नहीं है कि पुलिस आयुक्त ने दिनांक 19 सितंबर, 1967 का आदेश संख्या 2036 जारी किया था, जिसके द्वारा उसके अधीन कार्यरत सहायक पुलिस आयुक्तों को यह अधिकृत किया गया था कि वे अधिनियम की धारा 6 के अधीन तलाशी वारंट जारी करें, ऐसे पुलिस अधिकारी को, जो उनके अधीन कार्यरत हो और जिसका पद पुलिस उप-निरीक्षक से निम्न न हो। जैसा कि प्रदर्शित किया गया है, यह विधिसम्मत था, और यह तर्क करना निष्फल है कि उच्च न्यायालय ने इसके विपरीत अपीलकर्ता के कथन को अस्वीकार करते समय त्रुटि की।

46. इस निर्णय के आधारभूत सिद्धांत को लागू करते हुए, यह निष्कर्ष अपरिहार्य है कि पदाधिकारियों का प्रतिस्थापन (सी.एम.एम. के स्थान पर सी.जे.एम.) प्रशासनिक और कार्यपालिका, अथवा कहें तो अ-न्यायिक, कृत्यों के संदर्भ में, जो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंधों के आलोक में उनके द्वारा संपादित किए जाते हैं, वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 के साथ असंगत नहीं होगा; अपितु, यह उसकी व्याख्या के संदर्भ में एक अनुमेय दृष्टिकोण होगा और अधिनियम के विषय एवं उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए विधायी अभिप्राय को और अधिक प्रभावी बनाएगा। यह धारा 14 की एक सार्थक, उद्देश्यपरक तथा संदर्भानुकूल व्याख्या होगी, जिसके द्वारा सी.जे.एम. को सुरक्षित ऋणदाता की सहायता करने हेतु, सुरक्षित आस्तियों का कब्जा ग्रहण कराने के लिए, सक्षम माना जाएगा।

47. उपर्युक्त के पश्चात्, अब हमें विधियों की व्याख्या के संदर्भ में अपनाई जाने वाली

पद्धति के संबंध में उद्धृत अन्य निर्णयों पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

48. अतः, संक्षेप में, हम यह धारित करते हैं कि सी.जे.एम. वर्ष 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन सुरक्षित ऋणदाता द्वारा प्रस्तुत आवेदन से निपटने के लिए समान रूप से सक्षम है। तदनुसार, हम केरल, कर्नाटक, इलाहाबाद तथा आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालयों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का अनुमोदन एवं समर्थन करते हैं तथा इस संबंध में बॉम्बे, कलकत्ता, मद्रास, मध्य प्रदेश और उत्तराखंड के उच्च न्यायालयों के निर्णयों को निरस्त करते हैं। परिणामतः, सुरक्षित ऋणदाताओं (बैंकों) द्वारा प्रतिपादित भावी अधिनिर्णय के तर्क पर विस्तार से विचार करना अनावश्यक है।

49. प्रस्थान करते समय, हमें यह अभिलक्षित करना आवश्यक है कि एस.एल.पी. (सी) संख्या 7121 वर्ष 2019 से उत्पन्न दीवानी अपील, लंबित अपील में उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक अंतरिम आदेश के विरुद्ध निर्देशित है। अतः, इस अपील का निस्तारण इस स्वतंत्रता के साथ किया जाता है कि उसमें सम्मिलित पक्षकार, यदि विधि के अनुसार उपलब्ध हो, तो अन्य किसी मुद्दे/मुद्दों के संबंध में उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित अपील का अनुसरण कर सकें। उक्त का निर्णय विधि के अनुसार किया जाएगा।

50. उपर्युक्त शर्तों के अधीन, सभी अपीलों का निस्तारण किया जाता है, इस स्वतंत्रता के साथ कि पक्षकार अन्य ऐसे उपायों का अवलंब कर सकें, जो विधि के अनुसार अन्य मुद्दों के संबंध में अनुमेय हों। उसी का विचार उसके स्वविवेकाधिकार पर, विधि के अनुसार किया जाएगा। व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा। संबंधित अपीलों में लंबित आवेदन भी उपर्युक्त शर्तों के अधीन निस्तारित किए जाते हैं।

अंकित ज्ञान

अपीलें निस्तारित।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।